ISSN 2321-4945
UGC CARE LIST approved Research Journal

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

वर्ष : 14 ● अंक : 11 ● फरवरी : 2022

संपादक
डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया

अतिथि संपादक
प्रो. मोहन

युगावतार गांधी

चल पड़े जिधर दो डग मग में
चल पड़े कोटि पग उसी ओर,
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि
गड़ गये कोटि दृग उसी ओर,
जिसके शिर पर निज धरा हाथ
उसके शिर-रक्षक कोटि हाथ,
जिस पर निज मस्तक झुका दिया
झुक गये उसी पर कोटि माथ;
हे कोटिचरण, हे कोटिबाहु!
हे कोटिरूप, हे कोटिनाम!
तुम एकमूर्ति, प्रतिमूर्ति कोटि
हे कोटिमूर्ति, तुमको प्रणाम!
युग बढ़ा तुम्हारी हँसी देख
युग हटा तुम्हारी भृकुटि देख,
तुम अचल मेखला बन भू की
खींचते काल पर अमिट रेख;
तुम बोल उठे, युग बोल उठा,
तुम मौन बने, युग मौन बना,
कुछ कर्म तुम्हारे संचित कर
युगकर्म जगा, युगधर्म तना;
युग-परिवर्तक, युग-संस्थापक,
युग-संचालक, हे युगाधार!
युग-निर्माता, युग-मूर्ति! तुम्हें
युग-युग तक युग का नमस्कार!
तुम युग-युग की रूढ़ियाँ तोड़
रचते रहते नित नई सृष्टि,
उठती नवजीवन की नींवें
ले नवचेतन की दिव्य-दृष्टि;
धर्माडंबर के खँडहर पर
कर पद-प्रहार, कर धराध्वस्त
मानवता का पावन मंदिर
निर्माण कर रहे सृजनव्यस्त!
बढ़ते ही जाते दिग्विजयी!
गढ़ते तुम अपना रामराज,
आत्माहुति के मणिमाणिक से
मढ़ते जननी का स्वर्णताज!
तुम कालचक्र के रक्त सने
दशनों को कर से पकड़ सुदृढ़,
मानव को दानव के मुँह से
ला रहे खींच बाहर बढ़ बढ़;
पिसती कराहती जगती के
प्राणों में भरते अभय दान,
अधमरे देखते हैं तुमको,
किसने आकर यह किया त्राण?
दृढ़ चरण, सुदृढ़ करसंपुट से
तुम कालचक्र की चाल रोक,
नित महाकाल की छाती पर
लिखते करुणा के पुण्य श्लोक!
कँपता असत्य, कँपती मिथ्या,
बर्बरता कँपती है थरथर!
कँपते सिंहासन, राजमुकुट
कँपते, खिसके आते भू पर,
हैं अस्त्र-शस्त्र कुंठित लुंठित,
सेनायें करती गृह-प्रयाण!
रणभेरी तेरी बजती है,
उड़ता है तेरा ध्वज निशान!
हे युग-दृष्टा, हे युग-स्रष्टा,
पढ़ते कैसा यह मोक्ष-मंत्र?
इस राजतंत्र के खँडहर में
उगता अभिनव भारत स्वतंत्र!

-सोहन लाल द्विवेदी

एक हृदय हो भारत जननी

[केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित]

सलाहकार

श्री हरिकांत नाथ
प्रो. आर.एस. सर्राजु
प्रो. मोहन
डॉ. नारायण तालुकदार
डॉ. दिलीप कुमार मेधी
डॉ. अच्युत शर्मा
शंकर प्रसाद साहू

संपादक

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
(चलभाष : 9435340285)

अतिथि संपादक

प्रो. मोहन
(दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)
(चलभाष : 9871115500)

कार्यकारी संपादक

रामनाथ प्रसाद
(चलभाष : 9101541395)

शब्द संयोजन व अलंकरण

रतिकांत कलिता

एक प्रति	: बीस रुपये
अर्द्धवार्षिक	: सौ रुपये
वार्षिक शुल्क	: दो सौ रुपये

प्रकाशक

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी-781032

'द्विभाषी राष्ट्रसेवक' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण लेखक के हैं। संपादक या प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

लेखादि भेजने का पता :

संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,
रूपनगर, गुवाहाटी-781032
E-mailÑ arps.guwahati@gmail.com

Postal Rgd. No. GH-127/2019-2021 ISSN 2321-4945
UGC CARE LIST approved Research Journal

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा प्रकाशित
भाषा, साहित्य, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

वर्ष : 14 **अंक : 11** **फरवरी, 2022**

विषय-सूची

हिंदी विभाग

- संपादकीय — 2
- आदिवासी कहानी लेखन की प्रवृत्ति — ✍ डॉ. मनोहर भंडारे — 3
- समकालीन कविता में स्त्री संवेदना — ✍ गीता माला बरा — 8
- निर्मल वर्मा की कहानियों में सार्थकता और भाषा — ✍ डॉ. रोहित कुमार — 11
- शंकरदेव की 'कीर्तन-घोषा' में चित्रित शृंगार भावना : एक विवेचन — ✍ वर्णाली वैश्य — 17
- हास्य रस का भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण — ✍ प्रियदर्शिनी दास — 25
- हिंदी का विस्तृत फलक और कवि नेपाली — ✍ रौशन कुमार ✍ डॉ. विश्वजीत कुमार मिश्र — 28
- असमीया गद्य साहित्य के जनक बैकुंठनाथ भट्टाचाय — ✍ डॉ. नवकांत शर्मा — 34
- रमाशंकर 'विद्रोही' के काव्य में व्यक्त युगचेतना — ✍ सत्यवन्त यादव — 36
- असमीया साहित्य में रामभक्ति के महान गायक माधव कंदली — ✍ डॉ. दीपक कुमार गुप्ता — 42
- क्योंकि तुम हो — ✍ अज्ञेय — 46
- खटरा/बर्थ-डे — ✍ अल्हड़ बीकानेरी — 47
- काबुलीवाला (कहानी) — ✍ रवींद्रनाथ ठाकुर — 48

অসমীয়া বিভাগ

- চাওঁতাল জনগোষ্ঠীৰ 'টেবু' আৰু 'টোটেম' — ✍ ড° নয়নজ্যোতি দাস — 50
- অসমৰ কায়স্থ সমাজ ঃ এক আলোচনা — ✍ ড° সত্যজিৎ কলিতা — 56

लेखक/लेखिकाओं से अनुरोध : • 'द्विभाषी राष्ट्रसेवक' के लिए भेजे जाने वाले लेखादि साहित्य, कला, संस्कृति विषयक होने चाहिए। • भेजे गये लेखादि साफ अक्षरों में या टाइप कराकर ही भेजें। • अनूदित लेखों के लिए मूल लेख का उल्लेख करना अनिवार्य है। • सभी कानूनी विवादों का निपटारा गुवाहाटी न्यायालय के अधीनस्थ होगा।

संपादकीय

भारतीय संस्कृति की संवाहिका है हिंदी

एक भाषा के रूप में हिंदी न सिर्फ भारत की पहचान है बल्कि यह हमारे जीवन मूल्यों, संस्कृति एवं संस्कारों की सच्ची संवाहिका भी है। बहुत सरल, सहज और सुगम भाषा होने के साथ-साथ हिंदी विश्व की संभवत: सबसे वैज्ञानिक भाषा है, जिसे दुनियाभर में समझने, बोलने और चाहने वाले लोग बहुत ही बड़ी संख्या में मौजूद हैं। आप जानते हैं कि यह विश्व में तीसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है, जो हमारे पारंपरिक ज्ञान, प्राचीन सभ्यता और आधुनिक प्रगति के बीच एक सेतु का काम कर रही है।

हिंदी आम जन की भाषा की हैसियत से देश की एकता का सूत्र है। सभी भारतीय भाषाओं की बड़ी बहन होने के नाते यह विभिन्न भाषाओं के उपयोगी और प्रचलित शब्दों को अपने में समाहित करके सही मायनों में भारत की संपर्क भाषा होने की महती भूमिका निभा रही है। हिंदी जन आंदोलन की भाषा रही है। हिंदी के महत्व को गुरुदेव रवींद्र नाथ ठाकुर ने बड़े सुंदर रूप में प्रस्तुत किया था। उन्होंने कहा था – 'भारतीय भाषाएँ नदियाँ हैं और हिंदी महानदी है।'

भाषा का विकास उसके साहित्य पर निर्भर करता है। अत: इसके लिए यह अपरिहार्य है कि भारतीय भाषाओं के साहित्य का हिंदी में अनुवाद किया जाए। यह हम सब भलीभांति जानते हैं कि भाषा वहीं जीवित रहती है, जिसका प्रयोग जनता करती है। भारत में लोगों के बीच संवाद का सबसे बेहतर माध्यम हिंदी है। हिंदी के प्रचार-प्रसार से ही पूरे देश में एकता की भावना और अधिक मजबूत हो सकती है। इस बात को ध्यान में रखते हुए असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने द्विभाषी राष्ट्रसेवक के माध्यम से विद्यार्थियों, शोधार्थियों, प्रचारक-प्रचारिकाओं एवं अन्य विद्वानों की रचनात्मक सहायता से इस अंक को वैविध्यपूर्ण तरीके से संजोकर आप सभी के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

इस अंक में जिन रचनाकारों की रचनाएँ प्रकाशित की गई हैं, हम उन सभी रचनाकारों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं और आगे भी पत्रिका के कलेवर में निरंतर सुधार हेतु सुधी पाठकों से सुझाव व परामर्श की कामना करते हुए आप सभी को यह अंक सादर समर्पित है। ❑

आलेख

आदिवासी कहानी लेखन की प्रवृत्ति

✍ डॉ. मनोहर भंडारे

भूमिका :

सन् 1991 में भारत ने मुक्त अर्थव्यवस्था को स्वीकारा। 1991 से 2008 तक भारत का जीडीपी आठ तक गया था, जिसको हम विकास कहते हैं। लेकिन वह वर्ग विशेष तक सीमित रहा। अर्थात् इस वैश्वीकरण का सबसे अधिक आघात भारत की प्राकृतिक संपदा पर हुआ। जिनके कारण जल, जंगल और जमीन सुरक्षित थी उन्हीं आदिवासियों पर मुक्त अर्थव्यवस्था का सबसे भयावह परिणाम हुआ। बहुर्राष्ट्रीय कंपनियों से न नदी में पानी रहा, न जंगल में पेड़। कोयला खदान, बिजली परियोजना, बांध परियोजना से आदिवासी अपने जल, जंगल, जमीन से ध्वस्त हुआ है। भूटान जैसे छोटे से राष्ट्र ने विकास नीति का नया मॉडेल दिया, जिसको हम 'हैपी इन्डेक्स' कहते हैं। अर्थात् सुख के अनुसार विकास का नया मॉडेल दिया, जिसमें प्रकृति के अनुरूप विकास है। इस रास्ते से चलने के बजाय शहर केंद्रित विकास की नीति को अपनाया गया, जिससे सबसे अधिक नुकसान आदिवासियों का हुआ। इसी का प्रतिबिंब आदिवासी साहित्य पर पड़ा। अस्तित्व के खतरे से उनके सामूहिकपन की अस्मिता जागृत हुई, जिसके परिणामस्वरूप आदिवासी कहानी लेखन हुआ। आदिवासी कहानी लेखन तीन प्रकार का है। एक- आदिवासियों द्वारा हिंदी में लिखीं कहानियाँ, दूसरा- अपनी मातृभाषा में लिखीं कहानियाँ और तीसरा-गैर आदिवासी द्वारा लिखीं कहानियाँ। आदिवासी समाज बंदिस्त होने से गैर-आदिवासी उतनी गहराई में नहीं जा पाता है। अपवाद स्वरूप महाश्वेता देवी जैसे कुछ चंद साहित्यकार। उन्होंने गहराई से समझने का प्रयत्न किया है। कुछ बिंदुओं द्वारा आदिवासी कहानी का विश्लेषण निम्नांकित है :-

सामूहिकता :

शहरी मनुष्य की भाँति आदिवासी मनुष्य व्यक्तिकेंद्री नहीं होता है। वह सामूहिकता में विश्वास रखता है। वह संपत्ति का मालिक नहीं, बल्कि वह जल, जंगल और जमीन का ट्रस्टी होता है। वहाँ संपत्ति की अपेक्षा रिश्तों को अधिक अहमियत दी जाती है। वह अपना आनंद भी सामूहिकता में लेता है। नृत्य हो, संगीत हो, गाना हो-वह अपने जीवन और संस्कृति का हिस्सा समझता है। वह नदी, पेड़, पक्षी, प्राणी, पर्वत, जंगल और जमीन को अपने जीवन का हिस्सा समझता है। वह प्रकृति का दोहन नहीं करता है, बल्कि प्रकृति का संवर्धन करता है। अर्थात् प्रत्येक जगह पर सामूहिकता महत्वपूर्ण है। अर्थात् यहाँ व्यक्ति सुख या वैयक्तिक संपत्ति की अपेक्षा सामूहिकता और रिश्तों का अधिक महत्व होता है। आदिवासियों में निजी संपत्ति के लिए कोई स्थान नहीं है। वे आदिवासियत को बचाने के लिए सब कुछ दाँव पर लगाते हैं, जिसका दर्शन मूल आदिवासी कहानियों में मिलता है। जैसे-रोज केरकेट्टा की 'फिक्सड डिपोजिट', वाल्टर भेंगरा 'तरुण' की 'फूलो', कृष्णचंद्र टुडु की 'एक बित्ता जमीन' आदि। 'जिद' कहानी की नायिका

भी गाँव-गाँव जाकर आदिवासियों को शिक्षित करना चाहती है। अर्थात् वह मिशन के रूप में कार्य करती है। प्रशासकीय स्तर के अनेक बुरे अनुभवों से गुजरती, परंतु आदिवासियों को पढ़ाने की जिद नहीं छोड़ती है।

संस्कृति :

भाषा केवल भाषा नहीं होती, बल्कि उसके भीतर एक संस्कृति वहन करती है। आधुनिकीकरण, शहरीकरण और बाहरी धर्मों के प्रभाव से आदिवासी की संस्कृति पर बहुत बड़ा नकारात्मक परिणाम हो रहा है। कई आदिवासी भाषाएँ मर रही हैं, जिस कारण कई आदिवासी संस्कृतियाँ मृत्यु के कगार पर हैं। पुरानी पीढ़ी जिसे संभालकर रखती है, उसे बचाने के लिए जद्दोजहद कर रहे हैं, जिसके दर्शन एन.टी. लेपचा (सिक्किम) की 'मेरे मन मंदिर की स्वर्ण-दीपशिखा', नेचुरियाजो चुचा (नागालैंड) की 'जड़ें', सर बिदोर सिंह क्रो (असम) की 'शिक्षक' आदि कहानियों द्वारा होता है।

'मेरे मन मंदिर की स्वर्ण-दीपशिखा' कहानी की अम्मा केवल मात्र अम्मा नहीं थी, बल्कि वह सिक्किम के लेपचा संस्कृति की वाहक थी। लेपचा संस्कृति क्या होती है अम्मा उसे जीती है। कभी भाषा के द्वारा, कभी गीतों के द्वारा। उसकी मीठी वाणी की झंकार कानों में गूँज उठती है। उसके पास लोक संस्कृति का लोकवाद्य तंत्र था। लेपचा संस्कृति की कई कथाएँ अम्मा के पास थीं। अम्ममा की मृत्यु के समय मैं नामक पात्र अपने स्वगत कथन में कहता है- ''अम्मा की जबान में जादू था। उनकी भाषा में था गजब का आकर्षण। उनके गीतों का सिलसिला थमता तो वे हमें लेपचा संस्कृति और भाषा के बारे में बेहद आसान शब्दों में बताने लगतीं। लेपचा होना क्या होता है, यह मैंने उनसे ही सीखा। मैं उन्हें देखते ही अपनी पढ़ाई-लिखाई भूल जाता और देर तक उनके साथ घूमता रहता या फिर उनके साथ बैठकर उनके गीत सुनता रहता।''[1] अम्मा का मर जाना लेपचा संस्कृति के लिए कितनी हानि थी उसे वही जानता था। अपनी संस्कृति के लिए मर मिटना क्या होता है उसका प्रतीक अम्मा थी। प्रस्तुत कहानी अत्यंत हृदयद्रावक है।

प्रकृति :

आदिवासियों की दृष्टि में जल, जंगल और जमीन उनके जीवन का अभिन्न अंग हैं। वे स्वयं को प्रकृति का ही हिस्सा समझता हैं। दुनिया में जितने जंगल बचे हैं वे केवल आदिवासियों के कारण, अन्यथा भूमंडलीकरण ने सबसे अधिक तबाह आदिवासियों को किया है। प्रकृति और आदिवासी का संबंध जल-मछली जैसा है। वह प्रकृति का मालिक नहीं, ट्रस्टी समझता है। इसलिए आदिवासी कहानियों में ''प्रकृति अंगभूत गुणधर्मों के साथ आई है न कि अलंकार के रूप में। प्रकृति सौंदर्य कहानी को कवितारूपी बनाता है।''[2]

प्रकृति वर्णन के बिना आदिवासी कहानी ही नहीं बन सकती। एलिस एक्का की 'वनकन्या', ज्योति लकड़ा की 'कोराईन डूबा', सिकरादास तिर्की की 'चिड़ियाँ लटकाना', ममंग देई की 'देवों की वर्षा-भूमि', रोज केरकेट्टा की 'मैग्नोलिया पाईंट', वान्नेइहत्लुअंगा की 'निराशा के उस पर', दोजी श्रिंग लेपचा की 'फगोरिप और तम्बम' आदि आदिवासी कहानियों में प्रकृति प्रेम चित्रतुलिका की भाँति चित्रित है।

भारत की पहली आदिवासी कहानीकार एलिस एक्का की 'वनकन्या' में प्रकृति वर्णन अत्यंत विलोभनीय है। कहानी के प्रारंभ में ही प्रकृति वर्णन चित्रात्मक और काव्यात्मक रूप में-''जंगल ने मानो उस बस्ती को चारों ओर से घेरकर जैसे उसे गोंद में ले रखा हो। पेड़ वहाँ इतने ऊँचे, ऐसे छतनार कि सूरज की किरणें भी जंगल की धरती पर नहीं पहुँच पातीं। सर्वत्र शांति और शीतलता बिराजती है। जंगली जानवरों, साँप-बिच्छुओं और कीड़े-मकोड़ों का सुखद वासस्थान। वहाँ झींगुर

की झनकार, पक्षियों की काकली, पत्तियों की चुरमुराहट और खड़खड़ाहट, हवा की सरसराहट और साँय-साँय। एक ओर नदी अपनी कलकल-कुलकुल ध्वनि के साथ बहती जाती है।''[3] अत: आदिवासी कहानियों में प्रकृति चित्रण अंगभूतगुण के साथ अंकित है ।

प्रेम और सहचार्य भाव :

आदिवासी साहित्य में प्रेम सृष्टि का अनिवार्य तत्व है। इसलिए आदिवासियों में प्रेम की व्यापकता और विशालता महान है, किंतु इनका प्रेम भक्ति साहित्य जैसा अलौकिक नहीं है। उनके प्रेम का संबंध भौतिक है न कि अभौतिक, अलौकिक या आध्यात्मिक है। मौखिक रूप में जो पुरखा साहित्य है, उसमें प्रेम की कई अमर कथाएँ मिलती हैं, जैसे 'चम्पा कुई माधो सिङ', 'चान्दमुनि और राजकुमार', 'बुन्दी और सन्दु', 'मैग्नोलिया और पंचु' आदि प्रेम कथाएँ पुरखा परंपरा का हिस्सा हैं। पुरखा परंपरा ही आदिवासी साहित्य का प्रथम स्रोत है। रोज केरकेट्टा की 'मैग्नोलिया पाईंट' में जहाँ एक ओर प्रकृति और परिवेश का सौंदर्य है तो दूसरी ओर आदिवासी पंचु और ब्रिटिश गवर्नर की बेटी मैग्नोलिया का असीम प्रेम चित्रित है। प्रस्तुत कथा स्वतंत्रता के पूर्व की है। साथ ही खोर सिंह इंग्ती की 'भोर' कहानी में लोंग्कीरी और मोनजिर एक-दूसरे से प्रेम करते हैं। दोनों कार्बी हैं। दोनों का लक्ष्य एक ही है। वह है कार्बी आदिवासी का स्वतंत्र राज्य हो। इसलिए दोनों भी आंदोलन के लिए समर्पित होते हैं। दोनों वैवाहिक जीवन में बंध जाते हैं। उन्होंने बेटे का नाम भी 'संघर्ष' रखा है। लोंग्कीरी का अधिकतर जीवन जेल में जाता है। लेकिन दोनों का प्रेम और जीवन कार्बी समाज की मुक्ति के लिए समर्पित है।

अस्मिता और संघर्ष :

स्वतंत्र राज्य, स्वतंत्र जिला जैसे मुद्दों पर आदिवासियों ने कई बार आंदोलन किए हैं। किंतु सरकार ने पुलिस द्वारा आदिवासियों को प्रताड़ित किया। कईयों के साथ मारपीट की। कईयों को जेल में ठूँस दिया। कई संगठनों पर पाबंदी लगाई। अँग्रेजों ने तो चोर जाति का सिक्का लगाया था, जो कानून स्वतंत्र भारत में भी कई दिनों के बाद खारिज हुआ। आदिवासी जहाँ एक ओर पुलिस के मार के शिकार होते हैं तो दूसरी ओर नक्सलवादियों से भी आहत होते हैं, जिसका चित्रण असम के खोर सिंह इंग्ती की 'भोर', रोंगबोंग तेरांग की 'डर', सेमसोन सिंह हांसे की 'अमावस की रात' और नगालैंड की अंगमी आदिवासी की सिबैस्टियन जुमवू की 'भूमिपुत्र' में मिलता है।

कार्बी आदिवासी अलग राज्य के लिए आंदोलन करते हैं, जिसका जिक्र 'भोर' कहानी में आया है। इस आंदोलन में फुमेन, कुंग्री, सारमेन, लोंग्कीरी और मोनजिर आदि लोगों ने संघर्ष किया। फुमेन सभी आदिवासियों को संगठित करते हुए कहता है-''संघर्ष करने की ताकत किसानों के पास है, क्योंकि उनकी संख्या सबसे बड़ी है। हर किसान को इस संघर्ष के बारे में बताया जाना चाहिए। यदि सभी इस संघर्ष का कारण जान लें तो उन्हें इसमें शामिल करने के लिए हमें अनुरोध नहीं करना होगा। वे स्वयं ही इसमें शामिल हो जाएंगे। एक-एक व्यक्ति की सोच से मिलकर ही पूरे समाज की सोच निर्मित होती है।''[4] सारनेम को पूरा विश्वास है कि कार्बी लोग अन्यायों से मुक्ति के लिए संघर्ष करेंगे। लोंग्कीरी और मोनजिर संघर्ष की कसम खाकर वैवाहिक बंधन में बंध जाते हैं। अलग राज्य की माँग को लेकर छोटे बच्चे तक कह रहे थे कि-''जब तक अलग राज्य नहीं मिलेगा, हमारा संघर्ष नहीं रुकेगा।''[5]

विकास के नाम पर विनाश :

आदिवासियों के विकास के लिए कई योजनाएँ बनाई गईं, लेकिन वह मात्र कागज पर ही रह गई। कोई अफसर काम ठीक नहीं करता है या किसी को ठिकाने लगाना है तो आदिवासी क्षेत्र में ऐसे अफसर का तबादला किया जाता है। बाँध जैसी योजनाओं ने तो लाखों आदिवासियों को विस्थापित किया। बिजली बनी जंगलों में, लेकिन सारा जंगल अंधेरे में। चुनाव नजदीक आया तो जलयोजना बनाई गई, लेकिन उस नल से कभी पानी आया ही नहीं। ऐसी कई योजनाओं से आदिवासियों का जो मोहभंग हुआ, उसी की त्रासदी आदिवासी कहानियों में मिलती है। जैसे रोज केरकेट्टा की 'फिक्सड

डिपोजिट' और सिबैस्टियन जुमवू की 'भूमिपुत्र' में यही दर्द है।

'भूमिपुत्र' में सरकारी नल योजना आती है। नल योजना के लिए ग्राम विकास बोर्ड के द्वारा खर्च होता है। पाइप बिछा दिए, पानी की टंकी बनाई गई, नलके लगाए। सब लड़कियाँ खुशी से झुम रही हैं, क्योंकि सर्दी, धूप और बारिश में झरनों से पैदल पानी लाना बंद हो जाएगा। बस बर्तन लेकर दो कदम चलो और पानी घर के सामने हाजिर। लेकिन हफ्ते में ही मोहभंग हुआ। ''हफ्ते महीनों में बदल गए और महीने साल में, मगर हमें पानी के लिए झरना ही जाना पड़ता था। कई लाख रुपए लगा देने के बाद ही ठेकेदारों और इंजीनियरों के भेजे में यह घुसा कि स्रोत का तल गाँव से नीचे पड़ता था।''[6]

परिवार से टूटने का दर्द :

शिक्षा, नौकरी, रोजी-रोटी का अभाव, अकाल, बिगारी जैसे कारणों से आदिवासी मनुष्य अपने गाँव से कट रहा है। उन जड़ों से कटने का दर्द जितना शहर में आए आदिवासियों को होता है उससे भी अधिक गाँव में रहा व्यक्ति उससे भी अधिक कटा हुआ महसूस करता है। अत: परिवार से कटने का दर्द प्राय: कई आदिवासी कहानियों में आया है, जैसे-वाल्टर भेंगरा की 'बेबसी', रमाकांत बसुमतारी की 'वापसी', नेचुरियाजो की 'जड़ें' आदि कहानियों में।

वाल्टर भेंगरा 'तरुण' की 'बेबसी' कहानी में आदिवासी स्त्री मन की गुत्थी और परिवार से कटने का दर्द को कैसी सहती है, उसे पढ़कर कोई भी पाठक अस्वस्थ हुए बिना नहीं रहेगा। कहानी की नायिका फूलो है। उसके जीवन में अनेक कटाव आते हैं और वह बेबस अकेलापन का जीवन भोगती है। उसकी पीड़ा 'बेबसी' कहानी में चित्रित है। फूलो का जन्म अम्बाटोली में हुआ। उसकी शादी मंगा से होती है और वह अपना गाँव छोड़कर ससुराल में आती है। मायके से अलग होना उसके जीवन का पहला कटाव था। तीन बच्चों को पाल पोसकर बड़ा करती है। बड़े-बड़े सपने देखती है, लेकिन वे बच्चे भी गाँव छोड़ते हैं। इसके पूर्व पति की भी मृत्यु हुई थी। ''जिंदगी में जुड़ाव से अधिक कटाव ही देखा फूलों ने। बेबस और समाज से कटी-कटी रहने के बावजूद उसने हिम्मत नहीं हारी, जिंदगी की लड़ाई से।''[7] आखिर एक दिन नक्सलवादी उसकी झोपड़ी को जलाकर राख कर देते हैं। फूलों के जीवन में पेड़ों की कटाई की भाँति कई कटाव आते हैं, जिसका दर्द वह स्वयं अनुभव करती है। वह मात्र बेबस है।

आदिवासी स्त्री :

जैसे आदिवासी समाज में रहने वाली स्त्री या रोजगार तथा अन्य कारणों से गाँव से अलिप्त हुई स्त्री-अर्थात् दोनों का जीवन भिन्न है, उसी प्रकार आदिवासी पुरुष या स्त्री लेखिकाओं के द्वारा चित्रित स्त्री भी भिन्न-भिन्न रूप में चित्रित है। अन्य समाज की तुलना में आदिवासी स्त्री-पुरुष अधिक समान हैं, किंतु पूर्ण समानता न मिलने की पीड़ा और आत्मालोचना भी मिलती है। लेकिन आदिवासी स्त्री न नारीवाद से प्रभावित है और न दलितवाद की तरह से मुक्ति चाहती है।

एलिस एक्का की 'दुर्गी के बच्चे और एल्मा की कल्पनाएँ', रोज केरकेट्टा का 'घाना लोहार का', रूपलाल बेदिया की 'अमावस की रात में भगजोगनी', मंगलसिंह मुंडा की 'धोखा', येशे दरजे थोंगशी की 'आईना', कोयल की 'लाडली सुमरी' आदि में आदिवासी स्त्री का चित्रण प्रधानता से मिलता है।

'दुर्गी के बच्चे और एल्मा की कल्पनाएँ' में दुर्गी के जीवन में चार पति आते हैं और उनसे आठ बच्चे हो जाते हैं। वह शहर में मैला उठाने का काम करती है। उसकी बचपन की सहेली एल्मा पढ़ी-लिखी है। वह अच्छे पद पर है। एक दिन दुर्गी और एल्मा की मुलाकात होती है। दोनों एक-दूसरे के गले लगती हैं। दुर्गी अपने जीवन की त्रासदी बताते हुए रोती है, तब एल्मा उसको धीरज देते हुए कहती है- तू होनहार है, तू कितनी बहादुर है। आठ बच्चों का पालन पोषण करती है। एल्मा के सामने बीस वर्ष पहले की दुर्गी याद आती है। परिस्थितियों की चपेट से दुर्गी उम्र के पहले ही बूढ़ी हो गई है। ''एल्मा सोचने लगी। बीस साल की दुर्गी और आज की दुर्गी। दोनों में कितना फर्क है। उम्र परिवर्तन

लाती है, लेकिन जीवन की परिस्थितियाँ आदमी को कितनी शीघ्रता से परिवर्तित कर देती हैं। नसीब क्या से क्या कर दिखलाता है। बिचारी असमय में ही बूढ़ी लगने लगी है। उधर ऐसे कितने हैं जिनके पास बुढ़ापा जैसे फटकता ही नहीं। हजारों दिलों को लुभानेवाली दुर्गी आज पहचानी भी नहीं जाती।''[8]

रोज केरकेट्टा की अधिकतर कहानियाँ स्त्री केंद्रित हैं, जिसमें स्त्री प्रतिकार का स्वर अत्यंत प्रखर है। वह पितृसत्तात्मक समाज का विरोध करती है, जैसे-'भंवर', 'केराबांझी', 'छोटी बहू', 'गंध', 'मैना', 'पगहा जोरी-जोरी रे घाटो' तथा 'घाना लोहार का' आदि कहानियों में। 'घाना लोहार का' स्त्री विद्रोही कथा है। खुद को शिक्षित समझने वाला समाज स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार करता है, किंतु अनपढ़ अपने परिवार में स्त्रियों को समानता का दर्जा देता है, का भेद आदिवासी स्त्री-पुरुष में न के बराबर है।

अत: इन आदिवासी कहानियों में आदिवासियतपन है, जो कहानियाँ पुरखा साहित्य से प्रभावित और प्रेरित हैं। आदिवासी कहानियाँ मौखिक परंपरा को वहन करती हैं। हिंदी की तुलना में आदिवासी भाषा में लिखी आदिवासी कहानियाँ प्रचुर मात्रा हैं , जो कहानियाँ वैश्वीकरण में अपनी भाषा और संस्कृति को जिंदा रखने का मौलिक कार्य कर रही हैं। आदिवासी कहानियों का प्रकृति चित्रण कवितामय बन पड़ा है । वह अंगभूत है । प्रकृति के साथ का सहचार्य भाव शाश्वत विकास का विकल्प है, जो विकल्प मनुष्य जाति का ही नहीं, अपितु मानवेत्तर जीव का भी हितवर्धक होगा । संत तुकाराम के शब्दों में :-

''वृक्ष वल्ली आम्हा सोयरे ।
वनचरि सुस्वरे आळवीती।। '' ❑

संदर्भ :

1. संपा. रमणिका गुप्ता-'पूर्वोतर : आदिवासी सृजन स्वर', अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, (प्र.सं. 2008) पृष्ठ 315।
2. मनोहर भंडारे-'आदिवासी समाज का यथार्थ-बिरुवार गमच्छा तथा अन्य कहानियाँ', पृष्ठ 1 अप्रकाशित लेख।
3. संपा. वंदा टेटे-एलिस एक्का की कहानियाँ, पृष्ठ 37।
4. संपा. रमणिका गुप्ता-'पूर्वोतर : आदिवासी सृजन स्वर', अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, (प्र.सं. 2008) पृष्ठ 79।
5. वही, पृष्ठ 82।
6. वही, पृष्ठ 293।
7. संपा. रमणिका गुप्ता-भारत का आदिवासी स्वर, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली (प्र.सं.2018) पृष्ठ 236।
8. संपा.वंदना टेटे-एलिस एक्का की कहानियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2015, पृष्ठ 49।

-असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
श्री हावगीस्वामी महाविद्यालय, उदगीर
जि.लातूर (महाराष्ट्र)
संपर्क-08888001651
Email- dr.bhandaremanohar@gmail.com

विमर्श

समकालीन कविता में स्त्री संवेदना

✍ गीता माला बरा

संक्षिप्त सार :

स्त्री मुक्ति का सवाल स्त्रीवादी कवयित्रियों की कविताओं में उभर पड़ा है। समकालीन कविता साधारण लोगों की, विशेषकर स्त्रियों की मनोवेदना प्रकाश करने वाली कविता है, जहाँ समाज की स्वार्थी मनुष्यता खुले रूप से उजागर हुई है। यहाँ स्त्रियों की सामाजिक, आर्थिक दयनीय स्थिति का बड़ी बेबाकी से चित्रण हुआ है। साथ ही इस स्थिति से मुक्त होने की राह भी।

प्रस्तावना :

प्राचीन समाज व्यवस्था से देखा जाता है कि भारतीय समाज पुरुष प्रधान समाज रहा है। यहाँ नारी सदियों से अपमान, यातना और शोषण का शिकार हो रही है। वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक भारतीय समाज में स्त्री पर उत्पीड़न बढ़ा ही है। लेकिन कोई भी समाज सदा एक-सा नहीं रहता। समय के साथ उसमें परिवर्तन होते रहते हैं। सदियों के दासत्व से मुक्ति की छटपटाहट और अपनी अस्मिता तलाश करती हुई स्त्री दिखाई देती है। कविता स्त्री की बनी हुई चिर-परिचित छवि जैसे अबला, विलाप करती, कमजोर को तोड़ रही है।

मूल विषय :

समकालीन हिंदी कविता के परिदृश्य पर पुरुष कवियों के साथ-साथ कवयित्रियों की उपस्थिति भी लगातार सशक्त होती जा रही है। यदि हम समकालीन कविता में उल्लेखनीय कवयित्रियों का नाम लेना चाहें तो - अनामिका, कात्यायनी, प्रभा खेतान, सुनीता जैन, सविता सिंह, जया आदवानी, निर्मला गर्ग, रंजना श्रीवास्तव, रमणिका गुप्ता, सुमन केशरी, अनुराधा पाटिल, निहारिका, माधुरी भटनागर, यशोधरा मिश्र, रंजना, गिरीश आदि कई नाम अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज करा चुके हैं। इन कवयित्रियों ने स्त्री कविता को नया आयाम और नया स्तर भी दिया है।

समकालीन हिंदी कविता में कवयित्रियों ने स्त्री कविता के फलक को विस्तृत किया है। उसकी धार को और तीक्ष्ण किया है और उसके स्वर को संघर्षपूर्ण बनाया है। साथ ही समकालीन हिंदी कविता उन समस्त वर्जनाओं को तोड़ती है, जो पितृसत्तात्मक पुरुष समाज ने सदियों से स्त्री जाति पर थोप रखा है। ये ऐसा इसलिए करती हैं कि इन वर्जनाओं को तोड़कर, मिटाकर ही वह अपनी स्वतंत्रता का रास्ता बना सकती हैं। इन वर्जनाओं को तोड़ने के पूर्व वह अति सजगतापूर्वक इन वर्जनाओं की निर्मित करने वाले आधारभूत रूप की पहचान करती हैं। अनामिका की 'बेवजह' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं-

अपनी जगह से गिरकर
कहीं के नहीं रहते
केश औरतें और नाखून
अन्वय करते थे किसी श्लोक का ऐसे
हमारे संस्कृत टीचर।
और मारे डर के जम जाती थी

हम लड़कियाँ अपनी जगह।[1]

पुरुष समाज स्त्रियों को गुलाम बनाए रखने की साजिश रचता है और गुलामी के उपकरणों को सांस्कृतिक गरिमा का आवरण देने का षड्यंत्र भी रचता है तथा उसके स्वाभिमान को अनैतिकता के प्रतिमानों में शामिल करता है।

उसकी
गुलामी को कहा मर्यादा
हत्या को कुर्बानी
मौत को मुक्ति
जल जाने को सती
सौन्दर्य को माया, ठगनी
उसकी खुद्दारी को
कुल्टा-नटनी-कटनी।[2]

समाज में स्त्री और पुरुषों के लिए दोहरा मानदंड अपनाया जाता है। यथा- पुरुष को आत्मीय और श्रेष्ठ माना जाता है, जबकि स्त्रियों को हीन-दीन स्थिति में रहने को विवश किया जाता है। आज का स्त्री लेखन इस दोहरे मानदंड की जड़ तक जाकर इसकी सही पहचान भी करता है। अनामिका की यह कविता द्रष्टव्य है-

जगह? जगह क्या होती है?
यह वैसे जाने लिया था हमने
अपनी पहली कक्षा में ही!
याद था हमें एक-एक अक्षर
आरम्भिक पाठों का
'राम, पाठशाला जा!
राधा, खाना पका!
राम, आ बताशा खा!
राधा, झाड़ू लगा!
...
राम, देख, यह तेरा कमरा है,
'और मेरा?
'ओ पगली,
लड़कियाँ हवा, धूप, मिट्टी होती हैं
उनका कोई घर नहीं होता।'[3]

आधुनिक स्त्री स्वतंत्र रूप से अपना जीवन निर्वाह करना चाहती है। वह किसी पर भी निर्भरशील नहीं रहना चाहती। कवयित्री रमणिका गुप्ता ने नारी की आत्मनिर्भरता को अपनी कविता 'आदमी की पसली' में अंकित किया है। यथा-

''मैं मरूँगी भी नहीं
नहीं किसी को अपना गला घोंटने दूँगी
और न ही जिन्दा रहने का अहसास मानूँगी
किसी का बोझ नहीं बनूँगी
चूँकि मैं स्वयं बोझ बर्दाश्त करने की क्षमता रखती हूँ।''[4]

यही दृष्टिकोण अनामिका की कविता 'दरवाजा' में दृष्टिगोचर होता है-

''मैं एक दरवाजा थी,
मुझे जितना पीटा गया,
मैं उतना खुलती गई।''[5]

यहाँ दरवाजे को पीटना से स्त्री पर हुए उत्पीड़न और खुलना से उसके अंदर की विद्रोहात्मक भावना तथा साहस और संघर्षशील प्रवृत्ति का सटीक चित्रण हुआ है।

समकालीन कविता में मुख्यधारा की स्त्री ही नहीं, आदिवासी स्त्रियाँ भी क्रमशः सशक्त हुई हैं, निर्मला पुतुल की यह कविता द्रष्टव्य है-

''पर याद रखो।
तुम्हारी मानसिकता को पेचीदी गलियों से गुजरती
मैं तलाश रही हूँ तुम्हारी कमजोर नसें
ताकि ठीक समय पर
ठीक तरह से कर सकूँ,
हमला और बता सकूँ सरेआम गिरबान पकड़,
कि मैं वो नहीं हूँ जो तुम समझते हो।''[6]

जो स्त्री कल तक पानी और ईंधन जुटाने में आधी उम्र बिता रही थी वही अब धीरे-धीरे ही सही सार्थक

दिशा में अग्रसर हो रही है। आदिवासी कवयित्रियों में निर्मला पुतुल, कुसुम अलाम और बंदना टेटे आदि स्त्रियों को जगाने में अनवरत जुटी हुई हैं। इसके बावजूद जब हम आदिवासी स्त्रियों की स्थिति के गहन अध्ययन करते हैं तो देखते हैं कि परिणाम अत्यंत भयानक है। आज भी आदिवासी समाज में अशिक्षा, बर्बरता आदि से स्त्रियों की स्थिति कारुणिक ही है। निर्मला पुतुल की कविता 'आदिवासी स्त्रियाँ' में यह द्रष्टव्य है-

''उनकी आँखों की पहुँच तक ही
सीमित होती उनकी दुनिया
उसकी दुनिया जैसी कई-कई दुनियाएँ
शामिल है इस दुनिया में
नहीं जानती वे
वे नहीं जानती कि
कैसे पहुँच जाती है उसकी चीजें दिल्ली
जबकि राजमार्ग तक पहुँचने से पहले ही
दम तोड़ देती उनकी दुनिया की पगडण्डियाँ
नहीं जानती कि कैसे सुख जाती है
उनकी कैसे पहुँच जाती है उनकी महानगर
नहीं जानती वे
नहीं जानती।''[7]

निष्कर्षत : हम पाते हैं कि समकालीन कविता स्त्री आत्मबोध की पूर्ण अभिव्यक्ति का श्रेष्ठतम रूप है। कविता ही एक ऐसा साधन है, जहाँ समाज में हुए परिवर्तन का रूप साहित्य में स्पष्टत: परिलक्षित होता है। समकालीन कवयित्रियों ने कविता में स्त्री की पीड़ा, शोषण, घुटन, अन्याय, भ्रष्टाचार, अव्यवस्था और विद्रोहात्मक भावना बड़ी ही सूक्ष्म भाव में व्यक्त किया है ताकि भावी पीढ़ियों को वह सब देखना, सहना, भोगन न पड़े, जिसे उन्होंने देखा, सहा और भोगा है। यह सच है कि यह ध्वनि मुखरित तो हुई है, किंतु उनकी गूँज अभी तक जन-जन तक नहीं पहुँची है। तथापि हम आशान्वित हैं कि उन्हें शीघ्र ही अपनी मंजिल मिल जाएगी।

❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. अनामिका, 'पचास कविताएँ' वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण 2012 पृ. 39
2. रमणिका गुप्ता, 'मैं आजाद हुई हूँ' पृ. 45
3. अनामिका, 'पचास कविताएँ' वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिली, संस्करण 2012 पृ. 39-40
4. रमणिका गुप्ता, 'आदमी की पसली' किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 264
5. अनामिका, 'दूब-धान' भारतीय ज्ञानपीठ, संस्करण 2008, पृ. 182
6. निर्मला पुतुल, 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' पृ. 56
7. वहीं, 'आदिवासी स्त्रियाँ' पृ. 11

-सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
आनंदराम ढेकियाल फुकन कॉलेज, नगांव, (असम)
मो. : 9435317524

आलेख

निर्मल वर्मा की कहानियों में सार्थकता और भाषा

✍ डॉ. रोहित कुमार

कहने-सुनने की आदिम प्रवृति से आगे आकर कहानी ने आधुनिक साहित्यिक रूप की दृष्टि से स्वयं को 'पढ़त' की प्रवृत्ति से जोड़ा है। इस परिवर्तन का सबसे बड़ा प्रभाव कहानी प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति पर पड़ा है। कभी इसे कथ्य में आदि-मध्य-अंत के क्रम में प्रभावान्विति तो कभी अप्रत्याशित अंत और कभी कथाक्रम के अंत तथा कथाहीनता में देखा गया। वहीं कहानी का नयापन कभी विषय, परिवेश या भाषा के परिवर्तन से भी प्रस्तुत हुआ तो कभी गद्य रूपों जैसे- डायरी, पत्र, यात्रा-वृतांत और आत्मकथा आदि ने अपनी संरचना और शैली से कहानी को नवीनता प्रदान की। कुल मिलाकर जो संश्लिष्ट परिणाम सामने आया वह था- 'कसावट'। आधुनिक कहानी में अनुपयोगी वर्णन यहाँ तक कि शब्द के प्रति भी लेखक बहुत अधिक सतर्क हुए और इस तरह कहानी की कसावट एक अनिवार्यता बन गई। आधुनिक आलोचना में इस कहानी के सामने पाठ के प्रारूप में विश्लेषण का प्रश्न खड़ा हुआ। 'पाठ-प्रक्रिया का संबंध मूलभूत रूप से इस प्रश्न से है कि कहानी को सूक्ष्म और सक्रिय रूप से पड़ा जाए'[1], ताकि कहानी के भीतर अर्थबोध और संप्रेषण की प्रणाली का विश्लेषण किया जा सके। प्रत्येक कहानी अपनी विशिष्ट प्रक्रिया का एक ऐसा परिणाम होती है, जिसका अर्थ सिर्फ उसके भीतर की विभिन्न परतों में संघटित होता है, क्योंकि 'किसी भी संरचना में अभिव्यक्ति के सारे प्रतिनिधि रूप, चूँकि चिह्नों और प्रतीकों के बीच एक निरंतर चलते रहने वाले घमासान से निर्मित होते हैं, इसलिए अर्थ का कोई भी प्रतिनिधि रूप स्थायी नहीं हो सकता।'[2]

कहानी का विश्लेषण करते हुए कथानक, चरित्र और परिवेश आदि अवयवों से रचना के भीतर तो जाया जा सकता है, किंतु अकादमिक अध्ययन से बाहर कहानी की आलोचना में इसके प्रति विश्वास कम ही विकसित हुआ है। मूल रूप से आलोचना में जो दो मापदंड प्रयोग किए जा रहे हैं, उसे सार्थकता और भाषा, दो संश्लिष्ट योजना में देखा जा रहा है। इसे योजना कहना इसलिए सही है, क्योंकि यह मूल अवयवों की सफल योजना के पश्चात् संश्लिष्ट रूप से उभरते हैं। एक कहानी में एक सार्थक सत्य को पहचानने और उसकी योजना को संकेतित करने का प्रयास किया जाता है, ताकि बोध और संप्रेषित हो रही साहित्यिकता की पड़ताल की जा सके। पाठक से इतर आलोचक के सामने कहानी को पढ़ने के दो विकल्प हो सकते हैं-या तो वह लेखक की दृष्टि से कहानी को देखे और रचना-प्रक्रिया पर ध्यान दे या फिर पाठक की दृष्टि से कहानी को पढ़त के प्रभावान्विति में देखे। दोनों ही स्थिति में अर्थ-बोध की प्रक्रिया कार्य करेगी। यदि जीवन में जटिलताएं हैं तो कहानी में बोध और संप्रेषण के धरातल पर भी जटिलताएं होंगी।

निर्मल वर्मा की कहानियों में उनका सांस्कृतिक चिंतन सृजनात्मक लेखन की परतों में एक विशिष्ट प्रकार

की सार्थकता को जन्म देता है, जो पूरी कहानी को वर्णन की छवि से बाहर लाकर मानव नियति और अस्मिता की गहरी बहसों से जोड़ देता है। उनके भीतर चलने वाली प्रमुख बहस भारत और पश्चिम के बीच जीवन-दर्शन की बहस है, जो मानव नियति से टकराती और बार-बार लेखन में लौटती है। उनके लेखन में यह बहस संपूर्ण साहित्य के भीतर स्पंदित होती है। 'ऐसा बराबर लगता है कि वे हमारे भीतर चलने वाली बहस में शामिल हैं'[3] इसलिए उनका पाठ पाठक को स्पेस देता है और बहस के भीतर ले आता है। सार्थकता इन्हीं बहसों के मध्य विकसित होती है। उनकी कहानियाँ अपनी परतों में बहस के विषयों को विभिन्न स्थितियों, घटनाओं और वर्णनों में साथ लेकर चलती हैं। 'गद्य यहाँ बताने के बजाय सोचने लगता है।'[4] इससे पाठक अपने अनुभव और पाठ के अर्थ के मध्य एक निश्चित मार्ग में नहीं होता बल्कि स्वयं को अर्थ का निर्माता अनुभव करता है। इसका बड़ा कारण निर्मल वर्मा के लेखन में विरोधी-युग्म के बीच बहस को पैदा करना है। वे लिखते हैं - 'दो चरम बिंदुओं के बीच झूलता हुआ आदमी। क्या उन्हें (बिंदुओं को) नाम दिया जा सकता है? दोनों के बीच जो है, वह सत्य नहीं पीड़ा है। वह एक अर्धसत्य के बीच पेंडुलम की तरह डोलता है...।'[5] दो विपरीत छोरों के मध्य कहीं पाठक बहस को दोनों ओर देखता है। दो दुनिया की चर्चा कहानियों में बार-बार आती है। 'माया का मर्म' कहानी में बेरोजगार युवक अपने वर्तमान से बाहर आकर बच्ची लता माथुर की दुनिया में प्रवेश कर जाता है। एक वास्तविक दुनिया से अवास्तविक दुनिया में जाते हुए वह खुद को हल्का अनुभव करता है। कहानी की सार्थकता बेरोजगारी के उदास अनुभव और बूढ़ी माँ के झुर्रियों से भरे चेहरे की स्मृति से बाहर आना है - '...एक अपरिमेय रहस्यमयता की सुर-लहरी में माया का मर्म गरजने लगता है। 'यहाँ से बहुत दूर, सात समुंदर पार एक छोटा सा देश है...' फिर कहानी शुरू हो जाती है... और सुनने लगता हूँ।'[6] पूरी कहानी एक दुनिया के सामने दूसरी दुनिया की स्वीकृति की बहस ले आती है। इस कहानी की बहस एक अन्य कहानी 'दूसरी दुनिया' में भी दिखाई देती है, परिवर्तन है तो बस विदेशी परिवेश का, लेकिन कहानी की सार्थकता के बिंदु समान ही हैं। 'एक शुरुआत' कहानी में स्टीमर की यात्रा में भारत और यूरोप आमने-सामने आ जाते हैं। दोनों दो दुनिया के छोर हैं। एक का वर्णन दूसरे के लक्षण पर वरीयता की बहस सामने लाता है। भारत के लिए वर्णन है- 'इंडिया... उस रोज स्टीमर पर शाम की भीगी, उजली धूप में वह शब्द मेरे लिए कितना अजनबी-सा हो आया था। -स्ट्रेंज लैंड - उन्होंने फिर उस शब्द को धीरे-से दुहराया, मानो वे अपने-आप से कुछ कह रहे हों'[7] और यूरोप के लिए वर्णन है- 'यूरोप की यात्रा करते क्या आपको कभी महसूस नहीं हुआ कि ... देयर इज डेथ... डेथ इन एयर ऑल एराउंड? मैं स्तब्ध-सा बैठा रहा' (वही,पृष्ठ-54)। दो दुनिया के बीच पहचान और अस्मिता का सवाल मौजूद है। 'उन स्थितियों में जब कोई तीसरी दुनिया का चरित नायक 'पहली दुनिया' की यात्रा करता है।'[8] भारत और पश्चिम के खाँचे में 'दो घर' कहानी घर के दो भिन्न अर्थ-छायाओं में सार्थकता पैदा करती है। एक भरापूरा घर भारत में है, जहाँ संबंध और उनकी ऊर्जा है, जिसे बंगाली बाबू यूरोप के लिव-इन और उससे उत्पन्न बच्चों के बरक्स देखते हैं। कहानी में घर शब्द पीड़ा और भय को व्यंजित करता है - ''...' घर...' उन्होंने भयभीत दृष्टि से मेरी ओर देखा। कौन-सा घर? मैं आपका मतलब नहीं समझा।'[9] समस्या केवल स्थान की नहीं है बल्कि उससे मुक्त होने की भी है, जो बहस सांस्कृतिक मन के भीतर चलती है, उसे निर्मल वर्मा अनुभव की वास्तविकता में स्थान देने का आभास देते हैं और शेष पाठक पर छोड़ देते हैं- 'मरकर भी आदमी पूरी तरह से नहीं चुकता, जब तक दूसरे लोग उसकी अंतिम चीजों को पूरा नहीं कर देते' जब वे पूरी हो जाती हैं तो वह दूसरी बार मर जाता है, इस बार अंतिम तौर से।''[10] निर्मल वर्मा विपरीत अंत के मध्य को भी लेखन में स्थान देते हैं। उनके लेखन में 'ट्रांजिट स्टेशन' का अपना विशेष प्रभाव है। मलयज 'बीच बहस में' की कहानियों पर बात करते हुए घटना स्थलों को संकेतित करते हैं-

ट्रेन का डिब्बा, पब, पार्क का मैदान, अस्पताल का क्यूबिकल।[11] तो इसका विस्तृत विश्लेषण करते हुए मदन सोनी संपूर्ण कहानियों के घटना स्थलों में व्यंजित योजना को इंगित करते हैं – 'सड़कें, चौराहे, रेलवे प्लेटफॉर्म, ट्राम, नदी इनारे के टापू, जंगल, रेस्तरां, बार, ढाबे की बेंच, सराय का बेसमेंट पराये कमरे, हॉस्टल, होटल, कॉलेज, पुरानी किताबों की दूकान, ट्राम, स्टीमर...। ये वे जगहें हैं, जो 'घर' नहीं है, जो न केवल 'बाहर' है बल्कि जिनका बाहरीपन, खुलापन घर की सुरक्षित जगह के लिए हमेशा एक चुनौती एक खतरा है।'[12] कहना न होगा कि सार्थकता की भूमिका में इन घटना-स्थलों की व्यंजनाओं का भी विशेष महत्व है। कहानी का परिवेश और उसकी प्रकृति 'वस्तुओं के चित्रों में पहले-पहल देखे जाने का अपरिचित टटकापन है'।[13] निर्मल वर्मा के लेखन में यह अपनी किस्म की विशिष्टता है, जहाँ वस्तु और प्रकृति एक-दूसरे में घुलकर नया परिवेश या अनुभव प्रेषित करते हैं। घर और बाहर यदि विशिष्ट योजना है तो उनके भीतर दबे संबंधों और अजनबीपन के विपरीत संकेत भी इसी क्रम में सार्थकता को गढ़ते हैं। 'जलती झाड़ी' कहानी में अजनबीपन और उद्देश्यहीनता को पूरी कहानी में व्यंजित किया गया है। व्यक्ति होटल से बाहर पत्र डालने के बहाने निकला है और नदी किनारे आ जाता है। आस-पास मौजूद अजनबियों के मध्य खुद की तलाश में लगा व्यक्ति भीतर चल रही बहस में बार-बार 'अजीब-सी बैचेनी' का अनुभव करता है। एक अजनबी के जाने पर भी अजीब-सी झुरझुरी फैल जाती है – 'जैसे, मैं एक बहुत पेचीदा रहस्यमय ढंग से उस पर आश्रित हूँ, जैसे उसके जाने-भर से ही मैं कुछ खो दूँगा, जो एक लंबी मुद्दत मुझमें पलता रहा है, जैसे उसका यहाँ रहना खुद मेरे रहने से जुड़ा है।'[14] कहानी में स्त्री, लड़के, आदमी और कई शराबी भी आतें हैं, किंतु सबके साथ ही यही अनुभव बार-बार व्यक्ति अनुभव करता है। अजनबियत और आत्मीयता यहाँ एक-दूसरे को व्यंजित करते हैं, कहानी की सार्थकता इसी क्रम में संप्रेषित होती है। पाठक कहानी में अकेलेपन को नहीं बल्कि पहचान को अजनबियत में बदलते देखते हैं। यह वर्णन मानव-चेतना में मौजूद अज्ञात के प्रति अजनबी और आत्मीयता के गहरे आध्यात्मिक प्रश्नों से जुड़ जाता है। कहानियों में यह अनुभव पारिवारिक संबंधों के ठोस पटल पर भी उखड़े प्लास्टर की तरह सामने आता रहता है। 'मायादर्पण', 'कुत्ते की मौत', 'पहाड़', 'दहलीज', 'धागे', 'कव्वे और काला पानी', 'एक दिन का मेहमान' आदि बहुत-सी कहानियों में यह देखने को मिलता है। यह बेगानापन ही कहानी में सार्थकता का कारण बनता है। 'निर्मल वर्मा की कहानियों का व्यक्ति समाज का अंग होते हुए भी उससे प्राय: असम्पृक्त होता है। समाज से उनकी संलग्नता औपचारिक से अधिक नहीं होती।'[15] परिवार के बाहर भी अजनबीपन एक ठोकर की तरह पाठक को विशिष्ट अर्थ की पहचान से अलग करता है, जैसे-'तीसरा गवाह', 'लवर्स', 'अंतर', 'पिता और प्रेमी' आदि कहानियों में वर्णित है। इन कहानियों में चरित्र अकेलेपन को पहचान की तरह अनुभव करते हैं और उसी में स्वयं को स्वीकृत भी करते हैं। 'लवर्स' कहानी में कथावाचक प्रेम की अस्वीकृति पर अपने अजनबी होने की पहचान को ही स्वीकार कर लेता है, जिसे उसने कुछ ही समय पूर्व प्रेम-संबंध के लिए त्याग दिया था – 'वही कवर है, जो अभी कुछ देर पहले देखा था। वही बीच का दृश्य है, जिस पर अर्द्धनग्न युवती धूप में लेटी है। – क्या दाम है? – मैंने पूछा। लड़के ने मुझे देखा, दाम बताया और मुस्कराते हुए सीटी बजाने लगा।'[16] कहानी उसी पल सार्थक बनती है, यानी अपने उद्देश्य को संप्रेषित कर पाती है, जब प्रेमिका प्रेमी को अस्वीकार कर देती है। असल में पाठक कहानी को अर्थ की आदत में पड़ता है, जबकि साहित्यिकता या कहानी की सार्थकता इस आदत को ठेस पहुँचा कर ही प्राप्त होती है। 'छुट्टियों के बाद' कहानी में आँसुओं के कतरे और अँगूठी की चर्चा आदत को ठेस पहुँचाने के लिए ही आती है और छुट्टियाँ शेष दिनों से पृथक होकर कहानी को सार्थकता प्रदान कर देती हैं। छुट्टियाँ और शेष दिन जिस अर्थ में यहाँ हैं, उसी अर्थ में कथावाचक एक अन्य युग्म को इससे जोड़ देता है। – 'तब मुझे सहसा यह ख्याल काफी भयानक जान

पड़ा कि मैं विदेश का उतना ही आदि हो चला हूँ, जितना किसी समय अपने देश का था।'[17]

'कव्वे और काला पानी' कहानी में एक भाई अपने बड़े भाई में एक साथ दोनों अनुभवों को देखता है- 'सफेद-काली छितरी हुई लटों में वे संन्यासी और भाई के बीच कोई पहचाने-से अजनबी जान पड़ते थे।'[18] कहानी की सार्थकता इन शब्दों के व्यंजित अर्थ से संन्यास और दुनियादारी के बीच चली जाती है। इसी अर्थ में छोटा भाई पहाड़ी एकांत में जी रहे अपने संन्यासी भाई के सामने गहरे विषाद और पीड़ा से घिर जाता है। संन्यासी दुनिया का वर्णन वास्तविक दुनिया के अंतर्विरोधों को नीचे धकेल देता है और कहानी कव्वों के मोक्ष की कथा के मध्य सार्थक हो उठती है। शहर के निवासी इस जीवन के ट्रांजिट स्टेशन में प्रवासी बन जाते हैं। इस तरह एक अधूरापन और समय के भीतर कैद होने की बैचेनी कहानी में कोने-कोने तक फैल जाती है और इसी के विपरीत पूर्णता और स्मृति कथाक्रम में महत्वपूर्ण बन जाते हैं। 'दूसरी दुनिया' कहानी में बेरोजगार कथावाचक को बच्ची की दुनिया अपनी वास्तविक दुनिया से पूर्ण मुक्ति का मार्ग दिखा देती है- 'मेरी अब और आगे जाने की इच्छा नहीं थी। मैं इस बार अंतिम और अनिवार्य रूप में पकड़ लिया जाना चाहता था।'[19] पूर्णता की चाह मानव जीवन और कला जगत दोनों को है। 'निर्मल के यहाँ प्रकृति की अनिवार्यता, भाव की अनिवार्यता है। यह भाव अकेलेपन-अधूरेपन को भरने वाला पूर्णता का भाव है, यही अलगाव और लगाव है, यही निर्मल का निर्मित यथार्थ है।'[20] निर्मल वर्मा 'किसी अलग रोशनी में' दोनों जगत को एक-दूसरे को परिभाषित करने में प्रयोग करते हैं। कहानी में कोस्ता लड़की से पूछता है कि आपको कब लगता है कि आपकी पेंटिंग पूरी हो गई है? लड़की जो जवाब देती है, वह आदमी की बात को ही विश्लेषित कर एक खास अर्थसंकेत की ओर मोड़ देता है। कोस्ता को जवाब देते हुए लड़की कहती है - 'जब यह जान पड़े कि अब उसमें कुछ और नहीं हो सकता।'[21] वहीं आदमी डॉक्टर की बात को अपनी मुक्ति में देखता, एक खास प्रकार की पूर्णता के रूप में - 'आपसे एक बात कहूँ - जब उन्होंने कहा वे कुछ नहीं कर सकते तो मुझे पहली बार अपने भीतर एक राहत-सी महसूस हुई, जो सिर्फ रिहाई से आती है... मुझे लगा मैं अब कुछ भी कर सकता हूँ, कहीं भी जा सकता हूँ, कुछ भी... मुझे लगा मैं दुनिया को किसी दूसरी रोशनी में देख रहा हूँ। [22] निर्मल वर्मा की ऐसी कोई कहानी नहीं है, जहाँ अर्थ-संकेत के विरोधी या सहजीवी युग्म एक-दूसरे को परिभाषित न कर रहे हों। कहानी की संरचना को निर्मित करते दो चेतना-प्रवाह की योजना। यही योजना निर्मल वर्मा की कहानियों में ही नहीं संपूर्ण लेखन में देखी जा सकती है। इसी कारण पाठक कहानी पढ़ते हुए एक बहस में होने को अनुभव करता है, लेकिन निर्मल वर्मा किसी भी बहस में उत्तर नहीं देते बल्कि वे तो पाठक को बहस का हिस्सा बनाना चाहते हैं, यही कारण है कि उनके लेखन की कई 'पढ़त' देखने को मिलती हैं।

'अतीत' और 'लौटना' निर्मल वर्मा के लेखन में बहुत अहम अर्थ की भूमिका में होते हैं। दोनों ही मानव अस्तित्व के प्रश्न हैं - 'ज्योंही कोई व्यक्ति हमें छोड़कर चला जाता है, हम उसे अतीत में फेंककर बदला चुका लेते हैं, बिना यह जाने कि वह अब भी मौजूद है, जीवित है, अपने वर्तमान में जी रहा है, लेकिन हमारे समय से बाहर है।'[23] निर्मल वर्मा की कहानी एक ओर आगे बढ़ रही होती है तो पीछे अतीत में भी लौट रही होती है। उसका वर्तमान अतीत से मुक्त होकर नहीं बना होता। पाठक कभी उनके लेखन में दावा नहीं कर सकता कि वह पात्रों के साथ जी रहा है बल्कि पात्रों के जीवन में वो अचानक आ गया है, उसे बीता हुआ समय अभी वर्तमान में समझना होगा। यही कारण है कि 'स्मृति उनकी कथा का बीज है। उनके लिए अतीत कभी भूतकाल नहीं है, उनके हिसाब से भूत अपने में वर्तमान को समाये रखता है, उसे यादों अथवा पीड़ा से परिपूर्ण करता है, उसे गरमाता है अथवा सर्द झोंके से ठिठुरा देता है।'[24] कहानियाँ न केवल स्मृति है और न ही केवल

यथार्थ बल्कि वह तो उनके बीच उस स्थान पर है, जहाँ से दोनों ओर, किसी भी ओर से मुक्त हुए बिना देखा जा रहा है। यहीं हर बार मध्य स्थल पर ही कहानी की सार्थकता उभरती है, उसे इस योजना से पृथक नहीं समझा जा सकता।

भाषा में कुछ भी कहा जाता है तो उसकी अपनी विषयवस्तु होती है। 'सांस्कृतिक, सामाजिक, वैचारिक संदर्भ कहानी के पूरे कथन को प्रभावित करते हैं- भाषा चयन को भी और अभिव्यक्ति के अन्य उपादानों को भी।'[25]/ जहाँ एक ओर पाठ के रूप में पूरी कहानी में दो अर्थ-चेतना की योजना देखी जा सकती है, वहीं निर्मल वर्मा की कहानियों के पाठ में वाक्य के भीतर भी विरोधी-युग्म देखने को मिलते हैं- 'बत्ती जलते ही अन्धकार का मौन परिचय तीखी रोशनी में डूब गया और हम नए सिरे से अजनबी हो गए।'[26]/ टॉर्च के दायरे में दो गुँथी हुई देहों को देखकर वह एक क्षण समझ नहीं पाई, मरीज कौन है, मेहमान कौन? कौन बाकी है, कौन जा चुका है?'[27]/ 'बाद में जो उसका शौक था वो मेरी आदत बन गयी'[28]/ 'बाहर बिजली चमकती तो भीतर की रोशनियाँ झिपझिपाने लगती।'[29]/ इन उद्धरणों की संख्या बढ़ाई जा सकती है, लेकिन यहाँ यह कहना काफी है कि वाक्य-योजना के भीतर भी निर्मल वर्मा अपने संप्रेषित होने वाले अर्थ-बोध के प्रति अति सजग और सूक्ष्म नजर आते हैं। यही कारण है कि नामवर सिंह द्वारा कहा गया यह विचार बहुत प्रसिद्ध हुआ- 'एक बार दिशा-संकेत मिल जाने पर निरर्थक प्रतीत होने वाली बातें भी सार्थक हो उठती हैं।'[30] उनकी शब्दावली उनकी बहस को पाठक के लिए चुनौतीभरा संसार देती हैं। जहाँ एक ओर पोटली, बित्ती-भर, पगडण्डी, चेतना, खोखल, प्रसाद, बाबू, खूसट, कोठरी आदि भारतीय जीवन के शब्द हैं, वहीं पश्चिम के शब्द कोरिडोर, क्रोसिंग, चर्चयार्ड, सेंटीमेंटल, क्वाटर, पेंटोमिम, टूरिस्ट, परमिट, टर्मिनल आदि यहाँ अलग ही प्रभाव छोड़ते हैं। एक ही भाषा में बोलते और अपनी अनुभूति को प्रकट करते पश्चिमी और भारतीय पात्र पाठक की संप्रेषण प्रक्रिया को बाधित नहीं करते हैं बल्कि निर्मल वर्मा गद्य की विविध विधाओं में भाषा की इस छवि को बनाए रखते हैं।

निष्कर्षत: निर्मल वर्मा की कहानियाँ अपनी भाषा में उस सार्थकता को अपनाती हैं, जिसे इससे पहले इस भाषा में संप्रेषित नहीं किया गया था। विषय, परिवेश और अभिव्यक्ति की दृष्टि से उनका लेखन सांस्कृतिक विमर्श की बहसों को कथा-जगत में ले आता है, लेकिन यह उनकी उपलब्धि और कला जगत के प्रति नैतिक ईमानदारी ही कही जाएगी कि वे बहस का उत्तर नहीं देकर पाठक को उसके निर्णय का अवसर प्रदान करते हैं। ऐसा करते हुए वे अपने साहित्यिक परिवेश की भूमि के युग्म से प्रभावित होते हैं। वे उससे मुक्त होने का प्रयास अवश्य करते हैं, लेकिन उससे मुक्त होना उसी में प्रयासरत बने रहना है। मदन सोनी उनकी कहानियों पर उचित टिप्पणी करते हैं - 'निर्मल वर्मा अपनी कहानियों में उस जीवन की सच्चाई को थामते हैं, जो संसार में होते हुए भी सांसारिक नहीं है, यथार्थ में होते हुए भी उन मानकों के बाहर है, जिनसे यथार्थ को परिभाषित, संस्थापित किया जाता है।'[31] इस अर्थ में निर्मल वर्मा का लेखन अद्वितीय है। वे उस बहस के अग्रणी गद्यकार हैं, जहाँ किसी भी प्रकार के सीमांकन के बाहर अस्मिता और नियति के मध्य मानव-जाति के प्रश्न मौजूद हैं।

❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. सुरेन्द्र चौधरी, हिंदी कहानी प्रक्रिया और पाठ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली (संस्करण : 2010) पृष्ठ-123
2. विजय कुमार, अंधेरे समय में विचार, संवाद प्रकाशन, मेरठ (संस्करण : 2010) पृष्ठ-220
3. (प्रभात त्रिपाठी, आत्मीय संसार में कुछ घटता हुआ) नंदकिशोर आचार्य, अवलोकन : निर्मल वर्मा (संपा), वाणी प्रकाशन, दिल्ली (संस्करण : 2003) पृष्ठ-67

4. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी गद्य : विन्यास और विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (संस्करण : 2008) पृष्ठ-272
5. निर्मल वर्मा, धुंध से उठती धुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली (संस्करण : 2018) पृष्ठ-16
6. निर्मल वर्मा, परिंदे, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (संस्करण : 2008) पृष्ठ-35
7. निर्मल वर्मा, जलती झाड़ी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली (संस्करण : 2020) पृष्ठ-53
8. (प्रसेनजित गुप्त, निगाह का निषेध : निर्मल वर्मा की कथा में पहचान और अनुवाद) नंदकिशोर आचार्य, अवलोकन : निर्मल वर्मा (संपा), वाणी प्रकाशन, दिल्ली (संस्करण : 2003) पृष्ठ-43
9. निर्मल वर्मा, बीच बहस में, संभावना प्रकाशन, हापुड़ (संस्करण : 1973) पृष्ठ-62-63
10. निर्मल वर्मा, बीच बहस में, सम्भावना प्रकाशन, हापुड़ (संस्करण : 1973) पृष्ठ-84
11. विस्तार के लिए देखें, (मलयज, स्मृति में बंद रचना) नंदकिशोर आचार्य, अवलोकन : निर्मल वर्मा (संपा), वाणी प्रकाशन, दिल्ली (संस्करण : 2003) पृष्ठ-178
12. मदन सोनी, कथा पुरुष, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर (प्रथम संस्करण : 2000) पृष्ठ-59
13. नामवर सिंह, कहानी : नयी कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (संस्करण : 2005) पृष्ठ-65
14. निर्मल वर्मा, जलती झाड़ी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली (संस्करण : 2020) पृष्ठ-89
15. गोपाल राय, हिंदी कहानी का इतिहास : 1951-1975, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (दूसरा संस्करण : 2019)
16. निर्मल वर्मा, जलती झाड़ी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली (संस्करण : 2020) पृष्ठ-22
17. निर्मल वर्मा, बीच बहस में, संभावना प्रकाशन, हापुड़ (संस्करण : 1973) पृष्ठ-30
18. निर्मल वर्मा, कव्वे और काला पानी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली (संस्करण : 2017) पृष्ठ-157
19. निर्मल वर्मा, कव्वे और काला पानी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली (संस्करण : 2017) पृष्ठ-52
20. सुधीश पचौरी, निर्मल वर्मा और उत्तर-उपनिवेशवाद, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली (संस्करण : 2003) पृष्ठ-27
21. निर्मल वर्मा, सूखा तथा अन्य कहानियाँ, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (संस्करण : 2007) पृष्ठ-132
22. निर्मल वर्मा, सूखा तथा अन्य कहानियाँ, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (संस्करण : 2007) पृष्ठ-146
23. निर्मल वर्मा, कव्वे और काला पानी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली (संस्करण : 2017) पृष्ठ-147
24. (श्यामलाल, जो है सो यही है) नंदकिशोर आचार्य, अवलोकन : निर्मल वर्मा (संपा), वाणी प्रकाशन, दिल्ली (संस्करण : 2003) पृष्ठ-63
25. दिलीप सिंह, पाठ विश्लेषण, वाणी प्रकाशन, दिल्ली (संस्करण : 2007) पृष्ठ-110
26. निर्मल वर्मा, परिंदे, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (संस्मरण : 2008) पृष्ठ-39
27. निर्मल वर्मा, बीच बहस में, संभावना प्रकाशन, हापुड़ (संस्करण : 1973) पृष्ठ-124
28. निर्मल वर्मा, कव्वे और काला पानी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली (संस्करण : 2017) पृष्ठ-16
29. निर्मल वर्मा, सूखा तथा अन्य कहानियाँ, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (संस्करण : 2007) पृष्ठ-126
30. नामवर सिंह, कहानी: नयी कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (संस्करण : 2005) पृष्ठ-63
31. मदन सोनी, कथा पुरुष, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर (प्रथम संस्करण : 2000) पृष्ठ-51

-सहायक प्रोफेसर,
हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखंड
मो. 9868365531
Email - drrohitkumarhnbgu@gmail.com

आलेख

शंकरदेव की 'कीर्तन-घोषा' में चित्रित शृंगार भावना : एक विवेचन

✍ वर्णाली वैश्य

शोध सार :

असमीया नव-वैष्णव धर्म के उन्नायक तथा प्रचारक शंकरदेव बहुमुखी प्रतिभा के धनी होने के साथ-साथ असाधारण व्यक्तित्व के भी अधिकारी थे। वर्तमान समय में शंकरदेव को केवल असम या भारत में ही नहीं बल्कि विश्व दरबार में मानवता के दूत का स्थान दिया जाता है। संस्कृत, ब्रजावली और असमीया में उन्होंने रचनाएँ कीं। उनकी रचनाओं में 'कीर्तन-घोषा' को श्रेष्ठतम स्थान दिया जाता है। 'कीर्तन-घोषा' संपूर्ण असमीया साहित्य तथा समाज के उच्च आसन पर अधिष्ठित एक अमूल्य रचना है। एकशरण हरि नाम धर्म तथा भगवत भक्ति के प्रचार हेतु शंकरदेव ने समय-समय पर जिन घोषा गीतों की रचना की, उन्हीं का संकलित रूप 'कीर्तन-घोषा' है। मूलत: 'कीर्तन-घोषा' भक्तिप्रधान रचना है, किंतु इस कथात्मक भक्तिकाव्य के कुछ खंडों में शृंगार के उभय पक्षों का भी अनुपम निदर्शन देखने को मिलता है।

बीज शब्द : कीर्तन-घोषा, शृंगार, चित्रित, भावना।

प्रस्तावना :

भारतीय साहित्य में शृंगार की भी एक लंबी परंपरा रही है। विशिष्ट साहित्यिक प्रतिभा के अधिकारी शंकरदेव की अक्षय कृति 'कीर्तन-घोषा' में भी शृंगार रस का चित्रण हुआ है। शंकरदेव ने श्रीमद्भागवतपुराण, पद्मपुराण, ब्रह्मपुराण, श्रीमद्भावतगीता आदि शास्त्रों का अध्ययन कर उसके सारतत्व को ग्रहण कर अपनी मौलिक संरचना के बल पर कीर्तन-घोषा की रचना की। असम के आहोम राज्य, हाजो, धुँवाहाटा बेलगुरि, दक्षिण कुल, बरपेटा, बरनगर, पाटबाउसी, कालझार आदि भिन्न स्थानों पर ये घोषा गीत अस्त-व्यस्त रूप में बिखरे हुए थे। शंकरदेव के देहावसान के बाद उनके शिष्य माधवदेव ने अपने भांजे रामचरण ठाकुर द्वारा विभिन्न सत्रों से कीर्तन-घोषा का संकलन संपादन कार्य करवाया।

माधवदेव के आज्ञानुसार भांजे रामचरण ठाकुर ने जिस रूप में शंकरदेव की कीर्तन-घोषा को संगृहीत किया, वह उसी क्रम में वर्तमान में भी प्रचलित है। 'घुष' धातु से 'घोषा' शब्द की व्युत्पत्ति हुई है, जिसका अर्थ है 'आवृत्ति'। कीर्तन-घोषा की रचना भी कृष्ण-लीला, हरिभक्ति तथा नाम प्रसंग के लिए की गई थी। आज असम के सत्रों तथा नामघरों में संकीर्तन करने के लिए इन घोषा गीतों का सामूहिक गान किया जाता है। भक्त बड़े ही आदर तथा श्रद्धापूर्वक इन गीतों का संकीर्तन कर आह्लादित हो जाते हैं। असमीया भाषा, साहित्य और भक्ति का त्रिवेणी संगम कीर्तन-घोषा सभी धर्म, जाति तथा समुदाय के लोगों की मानसिक और आध्यात्मिक चेतना को जगाकर मानव जीवन को सफल बनाने का मार्गदर्शक है। शंकरदेव ने सर्वप्रथम बरदोवा निवास काल में कीर्तन-घोषा के सात खंडों की रचना की। कछारियों के साथ हो रहे लगातार संघर्ष तथा अत्याचार के कारण शंकरदेव अपने साथियों सहित बरदोवा छोड़कर धुँवाहाटा, बेलगुरि में अट्ठारह वर्षों तक निवास करते रहे। यही पर उन्होंने कीर्तन-घोषा के और आठ खंडों की रचना की, किंतु यहाँ भी अशांतिमय वातावरण के

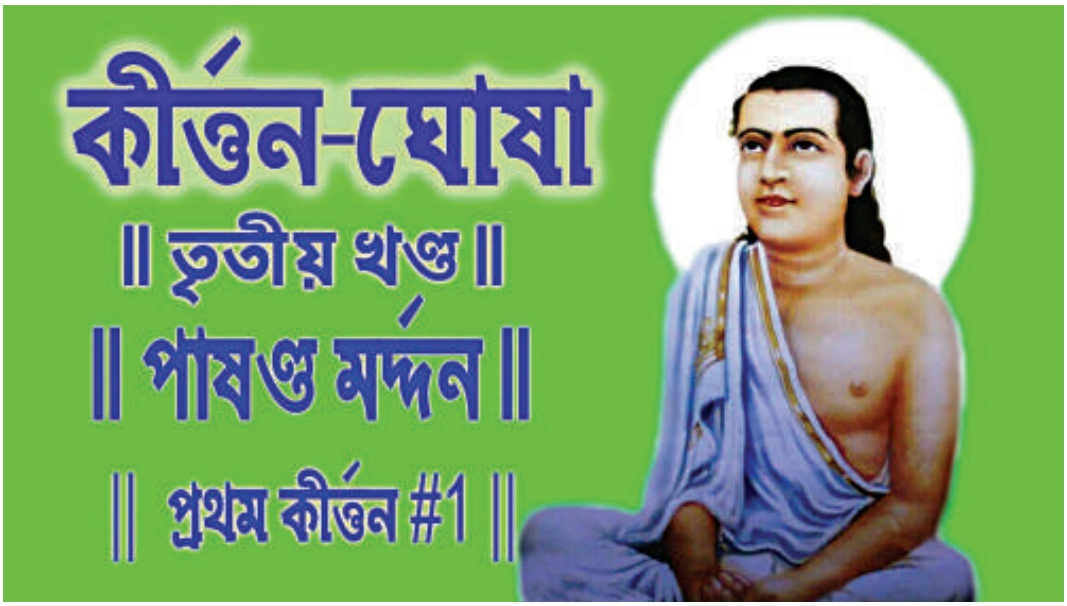

कारण शंकरदेव जीवन के अंतिम समय तक कोच राज्य में निवास करते हैं और वहीं पर कीर्तन-घोषा के अधिकतम चौदह खंडों की रचना करते हैं। शंकरदेव द्वारा रचित कीर्तन-घोषा की लोकप्रियता को देखकर इसे सत्र तथा नामघर की परिसीमा से निकालकर भक्तसमाज के साथ ही साहित्य प्रेमियों के लिए पहली बार हरिविलास अगरवाला ने सन् 1876 ई. में प्रकाशित किया था। वे असम के 'रूपकोंवर' नाम से प्रसिद्ध ज्योतिप्रसाद अगरवाला के दादा थे। हरिविलास अगरवाला के बाद हरिनारायण दत्तबरुवा, महेश्वर नेउग, यतीन्द्रनाथ गोस्वामी, मेदिनी चौधुरी, दामोदरदेव गोस्वामी, करबी डेका हाजरिका, सूर्य हाजरिका, श्रीमंत शंकरदेव संघ तथा अन्यान्य असम के साहित्यिक संगठनों ने कीर्तन-घोषा का संपादन कार्य किया है। कीर्तन-घोषा कथात्मक भक्ति काव्य है। इसमें कुल 30 खंड हैं। अंतिम दो खंड 'घुनुचार कीर्तन' और 'रुक्मिणीर प्रेमकलह' को लेकर विवाद हैं। इसलिए इन्हें कीर्तन-घोषा के परिशिष्ट में रखा गया है।

कीर्तन-घोषा के 30 खंडों के अंतर्गत 195 कीर्तन हैं। शंकरदेव के नववैष्णव धर्म का मूल मंत्र था-'एक देव एक सेव, एक बिने नाइ केव'।[1] कलिकाल में नामधर्म को ही युगधर्म के रूप में स्वीकार कर शंकरदेव ने असमीया भक्तवत्सल जनता के लिए 'कीर्तन-घोषा' की रचना की। 'कीर्तन-घोषा' वेदांत दर्शन, निष्काम भक्ति, दास्य भावना, सत्संग महिमा, माया से उद्धार हेतु भक्ति की प्रयोजनीयता, भगवान का भक्तवत्सल रूप, शिशु कृष्ण की बाल-लीला आदि गीतों से पुष्ट है। इस काव्य ग्रंथ में 30 खंडों में विभाजित प्रत्येक खंड स्वयंपूर्ण होने के साथ प्रसाद तत्व से अभिव्यंजित है, क्योंकि कीर्तन-घोषा में श्रीकृष्ण के करुणामय, भक्तवत्सल रूप का चित्रण हुआ है। आलोच्य कृति के खंड इस प्रकार हैं- चतुर्विंशति अवतार वर्णन, नामापराध, पाषंड मर्दन, ध्यान वर्णन, अजामिलोपाख्यान, प्रह्लाद चरित्र, गजेंद्रोपाख्यान, हरमोहन, बलिछलन, शिशुलीला, कालिया दमन, रासक्रीड़ा, कंस बध, गोपी-उद्धव संवाद, कुजीर बांछा पूरण, अकरुरर बांछा पूरण, जरासंध युद्ध, कालयवन बध, मुचुकंद स्तुति, श्यमंत हरण, नारदर कृष्ण दर्शन, विप्र-पुत्र आनयन, दामोदर विप्रोपाख्यान, देवकी-पुत्र आनयन, वेद स्तुति, लीलामाला, श्रीकृष्णर वैकुंठ प्रयाण, सहस्त्र नाम वृत्तांत, उरेषा वर्णन और भागवत तात्पर्य वर्णन।

कीर्तन-घोषा भक्ति रस से सराबोर है, साथ ही इसमें अन्य रसों का भी निदर्शन देखा जाता है। कीर्तन-घोषा के भिन्न खंडों में वर्णित कथाओं में हर्ष-विषाद, क्रोध-क्षमा, प्रेम-विरह आदि भावों का संगम हुआ है। कीर्तन-घोषा में अल्प ही सही किंतु आदिरस शृंगार का चित्रण भी हमें कुछ खंडों में मिलता है। अध्ययन के

दौरान जिन खंडों में शृंगार रस के संयोग और वियोग पक्षों का चित्रण मिलता है, क्रमशः वे खंड हैं- 'गजेंद्रोपाख्यान', 'हरमोहन', 'रासक्रीड़ा', 'कुजीर बांछापूरण' और 'गोपी-उद्धव संवाद'। प्रस्तुत खंडों में चित्रित शृंगार के उभय पक्षों का अध्ययन विवेचन करने से पूर्व यहाँ एक बात उल्लेख्य है कि शंकरदेव ने कीर्तन-घोषा में शृंगार का चित्रण केवल भक्ति मार्ग को सबल बनाने के लिए किया था। उन्होंने कीर्तन-घोषा के 'रासक्रीड़ा' खंड में स्वयं इस बात की पुष्टि की है-

शृंगार-रसे यार आछे रति।
आके शुनि हौक निर्मल मति।।
भकतर पदे आपुनि हरि।
क्रीड़िला रंगे नरदेहा धरि।। [2]

प्रस्तुत पद में शंकरदेव कहते हैं कि शृंगार में जिनकी रति अर्थात् मन रमता है, वे इस कथा को सुनकर मन को निर्मल करें। भक्तों द्वारा गाये जानेवाले इन पदों में हे हरि आपने मनुष्य रूप लेकर क्रीड़ा की है। अर्थात् यहाँ स्पष्ट है कि शंकरदेव ने भक्ति के साधन के रूप में ही शृंगार का चित्रण किया।

कीर्तन-घोषा में चित्रित संयोग शृंगार :

कीर्तन-घोषा में चार खंडों में संयोग शृंगार का चित्रण हुआ है- 'गजेंद्रोपाख्यान', 'हरमोहन', 'रासक्रीड़ा' और 'कुजीर बांछापूरण' में।

'गजेंद्रोपाख्यान' कीर्तन-घोषा का एक लघु खंड है, जिसमें तीन कीर्तन है। प्रस्तुत खंड के प्रथम कीर्तन में त्रिकुट पर्वत के अपरूप शोभा का वर्णन, दूसरे कीर्तन में मदमस्त गजेंद्र (इंद्र का हाथी) का केलि और तीसरे कीर्तन में ग्राह (मगरमच्छ) और गजेंद्र के बीच युद्ध तथा भगवान विष्णु द्वारा गजेंद्र उद्धार का वर्णन है। प्रचंड शक्तिशाली तथा मदमस्त गजेंद्र त्रिकुट पर्वत के वन में हथिनियों के साथ संभोग करते हुए विचरण करता है। एक पद देखिए-

चरंते फुरंते क्रीड़ंते याइ।
रहिला गजेंद्र भागर पाइ॥ [3]

अर्थात् चलते फिरते गजेंद्र उन हथिनियों के साथ संभोग करते जाता है और थकान होने पर वह रुक जाता है।

जलाशय के गहरे और ठंडे पानी में गजेंद्र बार-बार डुबकियाँ लगाता है, फिर हथिनियों के साथ जलक्रीड़ा करके अपने समस्त पीड़ा को दूर करता है।

विषय सुखत भैलेक भोल।
नेदेखे मृत्यु आसि पाइल कोल॥ [4]

अर्थात् विषय सुख में गजेंद्र इतना बेसुध होता है कि समीप आते मृत्यु को भी वह देख नहीं पाता। इस प्रकार काम भावना जो शृंगार का अन्यतम तत्व है, 'गजेंद्रोपाख्यान' में अनुपम रूप में चित्रित हुआ है।

'हरमोहन' कीर्तन-घोषा का एक अनुपम खंड है, जिसमें दस कीर्तन हैं। प्रस्तुत खंड में वर्णित आख्यान के अनुसार भोलेनाथ शंकर माता पार्वती के साथ भगवान विष्णु के मोहिनी रूप के अभिलाषी होकर विष्णुलोक जाते हैं, तत्पश्चात् वहाँ अपनी माया पर विजय पाने के अहंकार को प्रकट करते हैं। फिर विष्णु भगवान के मोहिनी रूप के वशीभूत होकर शंकर भगवान किस प्रकार ज्ञानशून्य, विवेकहीन, मतिहीन अवस्था को प्राप्त करते हैं, इसी का वर्णन यहाँ है। भगवान विष्णु के मोहिनी रूप का तथा भगवान शंकर के कामातुर रूप के वर्णन में संयोग शृंगार का उत्कृष्ट चित्रण हुआ है। एक उदाहरण यहाँ निम्नलिखित है-

हस्तिनीक जेन मत्त हस्ती याय खेदि।
पलांत सुंदरी शंकरक लाग नेदि।।
प्राण जाय शंकरर काम उतपाते।
महावेगे खोपात धरिला बाम हाते॥ [5]

अर्थात् जिस प्रकार काम में उन्मत्त हाथी हथिनी के पीछे दौड़ता है, उसी प्रकार भोलेनाथ शंकर भी सुंदरी (मोहिनी) के पीछे भागते हैं; परंतु सुंदरी उनके हाथ नहीं आती। तब काम पीड़ा से दग्ध शंकर भगवान तीव्र गति से दौड़कर सुंदरी की जुड़ा को ही अपने बाये हाथ से पकड़ लेते हैं।

इसी प्रकार प्रस्तुत खंड में शंकर भगवान की कामसक्त दुर्गति की भिन्न अवस्थाओं का चित्रण शंकरदेव ने किया

है। कामदेव की पंचबाणों से दग्ध विष्णु भगवान के विश्व मोहिनी अवतार को हासिल करने की ललक में महादेव वृक्षों को ही सुंदरी समझकर आलिंगन करते हैं, चुमने लगते हैं। किसी का ध्यान नहीं रहता है, उलंग वेश में ही चारों तरफ मोहिनी के पीछे उसे पकड़ने के लिए भागते रहते हैं।

कीर्तन-घोषा में चित्रित संयोग शृंगार के अन्यतम खंडों में से एक है- 'रासक्रीड़ा'। इसमें कुल अठारह कीर्तन हैं। कृष्ण के साथ कई गोपियों द्वारा किया गया नृत्य ही रासक्रीड़ा है। प्रस्तुत खंड में कृष्णभक्त गोपियों संग श्रीकृष्ण का शरदकालीन पूर्णिमा रात्रि कामकेलि का वर्णन, एकनिष्ठ भक्तिभाव और आत्मा-परामात्मा का मिलन का वर्णन है। शरदकालीन रात्रि अवतारी पुरुष कृष्ण ने अपने विश्व मोहन रूप धारण कर ब्रज की गोपियों संग रासक्रीड़ा की। कृष्ण की मधुर वंशी की सुललित ध्वनि सुन सभी गोपियाँ व्याकुल होकर अपने गृह कर्म, पति, पुत्र सबको वैसे ही छोड़ कर कृष्ण के पास पहुँचीं। कृष्ण की लोकनिंदा, धर्म निंदा, कुल मर्यादा के भय दिखाने पर भी गोपियाँ केवल कृष्ण सान्निध्य लाभ को ही पाने के लिए दृढ़ रहीं। इस प्रकार गोपियों की एकनिष्ठ प्रेम भक्ति भाव से संतुष्ट होकर कृष्ण ने उनकी मनोरथ पूर्ण करते हुए रासक्रीड़ा की-

गोपीर शुनि आकुल बाणी।
भैलंत सदय सारंगपाणि।।
हासिया बोलंत एड़ियो ताप।
गोपीक क्रीड़िला जगत बाप॥ [6]

अर्थात् गोपियों के आकुल स्वर सुनकर कृष्ण ने सदय होकर उनसे हँसकर कहा कि परिताप करना छोड़ दे और जगत के पिता ईश्वर कृष्ण स्वंय गोपियों के साथ केलि करने लगे। इस प्रकार प्रस्तुत खंड में गोपियों के साथ कृष्ण के रासलीला में अनेक स्थलों में संयोग के मनोमुग्धकारी चित्रण हुआ है।

कीर्तन-घोषा में उपर्युक्त तीन खंडों के अलावा 'कुजीर बांछापूरण' खंड में भी संयोग शृंगार का चित्रण हुआ है। केवल एक कीर्तन से रचित यह एक लघु खण्ड है। भागवत के दशम स्कंध के आधार पर रचित इस खंड में कुब्जा (सौरंध्री) के सेवा भाव से प्रसन्न होकर कृपालु श्रीकृष्ण ने किस तरह उसका मनोरथ पूर्ण किया उसी का वर्णन है। कुब्जा से शाप मुक्त बनी सौरंध्री की मनोकामना को पूर्ण करते हुए कृष्ण उद्धव के साथ कंस बध करने के बाद उसके गृह पर रुकते हैं। जहाँ दासियाँ कृष्ण और उद्धव की सेवा करती हैं। तत्पश्चात् कृष्ण सौरंध्री की इच्छा का मान रखते हुए उसकी काम भाव को पूर्ण कर संभोग करते हैं। 'कुजीर बांछापूरण' में चित्रित संभोग का एक चित्र देखिए-

मनुष्य चेष्टाक देखाइ कृष्ण पाछे
शय्यात भैला प्रवेश।
सैरिंध्रीउ आनि दिव्य अलंकार
पिंधिल बस्त्र बिशेष।।
मधुपीया गंधे चंदने कुंकुमे
भूषित करिला लास।
कर्पुर तांबुले भुंजि अनुरागे
चापिल कृष्णर पाश॥ [7]

अर्थात् साधारण मानविक आचरण दिखाते हुए कृष्ण सौरंध्री की शय्या में प्रवेश करते हैं। सौरंध्री भी दिव्य अंलकार तथा वस्त्र लाकर पहनती है। भ्रमर को लुभानेवाली सुगंधित चंदन, कुंकुम आदि से शोभित होकर कृष्ण के समक्ष लास्यमयी रूप में कर्पूर और सुपारी लेकर अनुराग से कृष्ण के पास आती है। यहाँ चंदन, कुंकुम आदि उद्दीपन विभाव है, जो रति भाव को जगाने में सहायक हुआ है।

इस प्रकार 'गजेंद्रोपाख्यान', 'हरमोहन', 'रासक्रीड़ा' और 'कुजीर बांछापूरण' खंडों में संयोग शृंगार का चित्रण हुआ है, किंतु यहाँ यह स्पष्ट करना जरूरी होगा कि प्रस्तुत चारों खंडों में शृंगार शंकरदेव का कदापि काम्य नहीं था, एकमात्र भक्ति ही उनकी प्रधानता रही है। विषय-वासना में विभोर गजेंद्र को जब जलाशय में ग्राह पकड़ लेता है, परस्पर युद्ध के पश्चात् अपनी मृत्यु को समीप देख गजेंद्र जब माधव को उद्धार के लिए करुण भाव से पुकारता है, तब कृपालु माधव अपने भक्त को आकर बचाते हैं।

'हरमोहन' खंड में भी माया पर विजय केवल

भक्ति से ही सम्भव दिखाया है। विष्णु भगवान के मोहिनी रूप को देखकर पागल और उन्मत्त होनेवाले भोलेनाथ शंकर को भी अंत में ईश्वर की लीला का ज्ञान होता है और उनके अंहकार का पतन होता है। इसी प्रकार 'रासक्रीड़ा' प्रकृतार्थ में भगवंत की एक प्रकार लीला है। इसमें भक्ति-धर्म की श्रेष्ठता को प्रतिपादित किया गया है। ब्रज वधुओं का कृष्ण प्रेम उनकी भक्ति भावना की ही अभिव्यक्ति है। रासलीला किसी साधारण मनुष्य के लिए संभव नहीं है, यह तो पूर्णकाम ईश्वर कृष्ण के लिए ही संभव है। ब्रज की गोपियों के लिए कृष्ण साधारण मानव नहीं, उनकी दृष्टि में कृष्ण मायाधीश, योगेश्वर तथा परमेश्वर हैं। इसीलिए वे कुल-स्त्री की मर्यादा, सम्मान, सुख सभी का त्याग कर भक्तवत्सल हरि के शरणागत हुई हैं-

भजियो आमाक मिलोक भाग।
नकरा नाथ भकतक त्याग।।
कहिला जितो कुलस्त्रीर कर्म।
तोमाते थाकक सिसव धर्म।।
जगतर बंधु आतमा तुमि।
समस्त धर्मर आपुनि भूमि।।
तुमि आत्मा हेन जानि संप्रति।
तोमातेसे करे भकते रति॥ [8]

यहाँ गोपियाँ कृष्ण से निवेदन करती हैं कि अब उन्हें उनकी सेवा भाव का भाग मिलना चाहिए। उनके लिए कुल स्त्री का धर्म अब असार है, केवल कृष्ण रति ही उनका धर्म है। जगतबंधु, परामात्मा तथा समस्त धर्म कृष्ण ही हैं। इसलिए गोपियों ने जब कृष्ण के स्वरूप को जान लिया है, तो वे एकनिष्ठ भाव से कृष्ण की प्रेम भक्ति में निमज्जित होती हैं।

डॉ. नवीन चंद्र शर्मा ने शंकरदेव की रासक्रीड़ा के संबंध में अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है-

'रासक्रीड़ात यि क्रीड़ार परिस्फुरण घटिछे सेइ क्रीड़ा कामभावर परा संपूर्ण बाहिरत। जगत-प्रपंच भगवंतर लीला माथोन-लीलैव केवलम। गतिके रासक्रीड़ा लीला-नट भगवान कृष्णर नृत्यलीला माथोन। रासक्रीड़ा एने लीला, यि लीलार संयोगत भक्तर मनत सांसारिक कामना-वासना, माया-ममता एको नाथाके, थाके माथोन सप्रेम भक्ति, यि भक्तर बलत जीवइ ब्रह्मर लगत एकीभूत हबलै प्रयास करे। साधारण आरु अभकतजने नायक-नायिकार प्रणयपूर्ण लीला-माला दर्शन आरु श्रवण करार फलत लाहे लाहे तेउँलोकर जांतव प्रवृत्तिबोर परिशोधित है ऐश्वरिक भाववृत्तिलै रुपांतरित हब।'[9]

अर्थात् रासक्रीड़ा में जिस क्रीड़ा को दिखाया गया है, वह पूर्णत: काम भाव से रहित है। जगत के योगेश्वर भगवंत की लीला है-लीलैव केवलम। इसलिए रासक्रीड़ा लीला-नट भगवान कृष्ण की नृत्य लीला मात्र है। यह इस प्रकार की लीला है, जिसके संयोग से भक्त के मन में सांसारिक काम-वासना, माया-मोह कुछ नहीं रहता, रहता है केवल सप्रेम भक्ति, जिस भक्ति के बल पर जीव ब्रह्म के साथ विलीन होने का प्रयत्न करता है। साधारण और नास्तिक जनों द्वारा नायक-नायिका के प्रणयपूर्ण लीला-माला दर्शन और श्रवण करने पर धीरे-धीरे उनके पाशविक प्रवृत्तियों का परिशोधन होकर ऐश्वरिक भाव में परिवर्तन होगा।

कीर्तन-घोषा में शंकरदेव ने शृंगार पक्ष का चित्रण करते हुए सौंदर्य तथा रूप वर्णन भी किया है। शृंगार के संयोग वर्णन में रूप वर्णन का अत्यधिक महत्व रहता है। कीर्तन-घोषा भागवत पर आधारित तो है, पर इसमें शंकरदेव की मौलिक संरचना अनुपम रही है। कीर्तन-घोषा में केवल पाँच खंडों में ही शृंगार का चित्रण हुआ है, किंतु उसमें चित्रित सौंदर्य चित्रण किसी भी कमी को खलने नहीं देती। 'हरमोहन खंड' में चित्रित मोहिनी अवतार के अपरूप तथा चमत्कारिक नख-शिख सौंदर्य का एक चित्र यहाँ प्रस्तुत है, जिसके कारण देवाधिदेव शंकर कामज्वाला में पागल हो गए थे-

कोटिलक्ष्मी सम नोहे कटाक्षे त्रैलोक्य मोहे
भंटा खेरि खेले दुयो हाते।।
तप्त सुवर्णर सम ज्वले देहा निरुपम
ललित-बलित हात पाव।
चक्षु कमलर पासि मुखे मनोहर हासि
सघने दरशे काम-भाव।।[10]

अर्थात् उस अपरूप मोहिनी के समक्ष करोड़ों

लक्ष्मियों की भी तुलना नहीं है, जिसके कटाक्ष सबको मोहते हैं वह अपने दोनों हाथों से भंटा अर्थात् गोलाकार गोटियाँ लेकर खेल रही है। उसका शरीर उज्ज्वल सोने की तरह चमक रहा है और हाथ-पैर की शोभा भी अनुपम है। आँखें कमल पंखुरियों की भांति हैं, उस पर उसकी मुख की मनोहर हँसी तीव्र रूप से काम भाव को जगाती है।

मोहिनी विष्णु भगवान का ही अवतारी रूप होने के कारण उसके सौंदर्य में दिव्यता का अंकन शंकरदेव ने किया है। मोहिनी रूपी सुंदरी अपने कटाक्ष तथा अंग-प्रत्यंग की भंगिमा से ऐसे सौंदर्य की छिटकारी मारती है कि महादेव जैसे महायोगी कामुक बनने पर विवश हो जाते हैं। शंकरदेव ने ब्रह्म रूपी कृष्ण के परम मधुर रूप-सौंदर्य का अनुपम चित्रण 'रासक्रीड़ा' में चित्रित किया है, उदाहरणस्वरूप-

हासो हासो करे आति बदन-कमल।
श्याम तनु पीत वस्त्रे देखिते उज्वल।।
चिकिमिकि करे अंलकारर दीपिति।
गलत पद्म माला देखंते तृपिति।।
देखि रूप मदनरो मोहन साक्षात।
उठिल आनंद सवे गोपी असंख्यात।। [11]

अर्थात् मधुर मुरारि कृष्ण के कमल सदृश मुख पर हास्य विराजमान है और उनका श्यामल शरीर पीत वस्त्रों के साथ उज्ज्वलित है। देह पर धारण किये गये अंलकार दीप्ती प्रदान कर रहे हैं एवं गले में पद्म माला को देखकर ही मन तृप्त होता है। कामदेव को भी हराने वाली मोहन कृष्ण को साक्षात देखकर असंख्य गोपियाँ आनंद विभोर हो उठीं।

विलक्षण प्रतिभा के धनी शंकरदेव ने प्रकृति के अपरूप सौंदर्य को उद्दीपन बनाकर कीर्तन-घोषा में शृंगार का चित्रण किया है। प्राकृतिक सौंदर्य वर्णन करते समय शंकरदेव ने असम की प्राकृतिक छटाओं का उल्लेख कर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। असम के पेड़-पौधे, फल-फूल, पक्षी आदि के नाम 'कीर्तन-घोषा' में विद्यमान हैं। 'गजेंद्रोपाख्यान' में चित्रित 'आम जाम लेबु जरा जामीर खाजुरि'[12] पद में प्रकृति का अनुपम चित्रण हुआ है।

कीर्तन-घोषा में चित्रित वियोग शृंगार :

कीर्तन-घोषा में शंकरदेव ने विरह का भी चित्रण किया है। कीर्तन-घोषा के 'गोपी-उद्धव संवाद' खंड में मूलत: विरहाकुल गोपियों के विरह का चित्रण हुआ है, साथ ही रासक्रीड़ा खंड में भी कुछ क्षणों के लिए कृष्ण को न देख गोपियाँ विरहावस्था से गुजरती है। प्रस्तुत दोनों खंडों में चित्रित विरह वर्णन को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया गया है :

श्रीमद्भागवत महापुराण के आधार पर रचित कीर्तन-घोषा का 'गोपी-उद्धव संवाद खंड' एक लघु खंड है। इसमें केवल एक ही कीर्तन है। प्रस्तुत खंड में कृष्ण के विरह में व्याकुल गोपियों को सांत्वना देने के उद्देश्य से कृष्ण का सखा उद्धव को गोकुल नगरी भेजने, गोपियों संग उद्धव का वार्तालाप, कृष्ण का समाचार, गोपियों के कृष्ण-विरह में व्याकुलता और अंत में गोपियों को ईश्वर भजन कर मोक्ष प्राप्ति का उपाय बताने का वर्णन है। कृष्ण को स्मरण कर उनके गीत गाती हुई विरहिणी गोपियों के व्याकुल मन का एक चित्र देखिए-

गोपीगणो आति व्याकुल चित्त।
गावे उजागरे कृष्णर गीत।।
काहारो हरि बिना नाहि स्वस्त। [13]

अर्थात् गोपियाँ कृष्ण को याद कर उसके विरह में अत्यंत व्याकुल हैं। कृष्ण के गीत गाकर ही वे रात गुजारती हैं अर्थात् वे रात भर नहीं सोतीं। कोई भी कृष्ण के बिना स्वस्थ नहीं है।

यहाँ गोपियों की अस्वस्थता व्याधि के अंतर्गत आती है। कृष्ण को देखने की अभिलाषा को व्यक्त कर गोपियाँ उद्धव से पूछती हैं-

आर कि आसिब नंदर पुर।
कैसानि देखिबो मुख प्रभुर।। [14]

अर्थात् और कृष्ण कब आएँगे नंद के पुर यानी गोकुल। हम (गोपियाँ) उनके श्रीमुख का दर्शन कब

कर पाएँगी।

अपने पति-पुत्र तथा विषय सुख को त्याग कर एकनिष्ठ प्रेम भाव से दिन-रात गोपियाँ केवल कृष्ण के नाम का गुण-गीत गाकर रोती बिलखती रहती हैं-

रात्रि दिने गावे हरि चरित्र।
तिनिउ लोकक करि पवित्र।।
बोलंत अनेक प्रबोध-बाक।
क्रंदन आवे एड़ा गोपिजाक।। [15]

अर्थात् गोपियाँ विरह में रात-दिन हरि गीत गाकर तीनों लोकों को पवित्र करती हैं। तब उद्धव उन्हें प्रबोध देकर रोना त्यागने को समझाते हैं।

शंकरदेव ने प्रस्तुत खंड में ही कम शब्दों में ही विरह की जड़ अवस्था का चित्रण भी किया है-

कृष्णते सबे निमाईजिला मन।
काहारो गात नाहि चेतन।। [16]

अर्थात् कृष्ण प्रेम में गोपियाँ इतनी निमज्जित हो जाती हैं कि किसी के शरीर में चेतना ही नहीं रहती।

इस प्रकार 'गोपी-उद्धव संवाद' में शंकरदेव ने गोपियों की विरह कातर अवस्था का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है, किंतु इसमें गोपियों का विरह पूर्णत: प्रेम भक्ति से ओतप्रोत है, जिसमें विषय सुख की तनिक भी गंध नहीं मिलती।

कीर्तन-घोषा के 'रास-क्रीड़ा' खंड में संयोग के साथ वियोग का भी मार्मिक चित्रण मिलता है। 'रास-क्रीड़ा' खंड में जब कृष्ण को पाकर गोपियों के मन में अहं भावना का उदय होता है, तब कृष्ण उनके दर्प का नाश करने हेतु अदृश्य हो गए और गोपियाँ कृष्ण को न पाकर विलाप करने लगती हैं-

गोपीर महा अहम्मव-भाव।
देखि नसहिला कृष्णर गाव।।
तासम्बार दर्प हरिवे मने।
भैला अंतर्द्धान तैते तेखने।।
कृष्णक नपाइ पाछे गोपीचय।
मिलिल संताप भैलंत भय।।
जेन यूथपक नेदेखि बने।
कांदे आर्तरावे हस्तिनीगणे।। [17]

अर्थात् गोपियों की घोर अहंकार भाव को देख कृष्ण असहनीय हो उठे। उनका अहंकार तोड़ने के लिए कृष्ण अदृश्य हो गए। कृष्ण को न देख गोपियाँ उन्हें खोजने लगीं पर वे न मिले और गोपियाँ भयभीत होकर संताप करने लगीं। जैसे दल के प्रधान हाथी को न पाकर हथिनियाँ आर्तनाद करती हैं, वैसे ही गोपियाँ विरह में बिलखने लगीं।

कृष्ण के विरह में व्यथित विरहिणी गोपियों की उन्माद अवस्था का मर्मस्पर्शी चित्रण यहाँ प्रस्तुत है-

हे आम जाम बेल बकुल।
नाहि उपकारी तोमार तुल।।
कृष्णर विरहे देखो आंधार।
कोवा कैक गैल प्राण आमार।। [18]

अर्थात् कृष्ण को न पाकर गोपियाँ उपकारी आम, जामुन, बेल, बकुल आदि पेड़ों से कृष्ण का पता पूछती हैं, जो बोल ही नहीं सकते। वह इतनी विरहविह्वला हो गई हैं कि उन्हें चारों ओर अँधेरा ही दिखता है। फिर से वह उन वृक्षों से उनके प्राण-रूपी कृष्ण कहाँ गए पूछती हैं।

वियोग की चरम अवस्था मृत्यु होती है। 'रासक्रीड़ा' में शंकरदेव ने एक स्थान पर इसका स्पर्श करते हुए विरहिणी गोपियों की दयनीय अवस्था का चित्रण किया है। उदाहरणस्वरूप-

इहाकेसे सुमरंते प्रभु प्राण जाय।
तुमिसि आमार जीव प्राण समुदाय।।
एतेक बोलंत उपजिल प्रेम-भाव।
कांदे कृष्ण बुलिया पारय दीर्घ राव।।
गावे गीत कतो नयनर झरे नीर।
हा कृष्ण कृष्ण बुलि चित्त नोहे स्थिर।। [19]

अर्थात् गोपियाँ अपने प्राण कृष्ण का नाम ले-लेकर उन्हें स्मरण कर रही हैं, प्रभु कृष्ण को याद कर अब उनके प्राण निकलने को हैं। कृष्ण को पुकारकर वे जोर-जोर से

बिलखने लगती हैं। किसी गोपी का कृष्ण गीत गाते आँखों से अश्रुधारा बह रही है तथा इस तरह बार-बार कृष्ण को पुकारने के कारण वे अस्थिर हो गई हैं।

इस प्रकार 'गोपी-उद्धव संवाद' और 'रासक्रीड़ा' खंडों में शंकरदेव ने विरह की सभी दशाओं के चित्रण के साथ विरहिणी गोपियों का अत्यन्त हृदयस्पर्शी चित्रण किया है।

निष्कर्ष :

इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन के उपरांत कहा जा सकता है कि कीर्तन-घोषा जो मूलत: भक्तिप्रधान रचना है, किंतु इसके पाँच खंडों में आदिरस शृंगार का चित्रण मिलता है। शृंगार शंकरदेव का केवल एक माध्यम रहा है, जिसकी परिणति केवल हरि भक्ति ही है, जिसके बारे में शंकरदेव ने कीर्तन-घोषा में स्पष्ट कहा है। वैसे कीर्तन-घोषा में शंकरदेव ने शृंगार के उभय पक्षों का अनूठा चित्रण केवल पाँच खंडों में कर अपनी रचनात्मक प्रतिभा का अद्‌भुत परिचय दिया है। संयोग वर्णन में कवि शंकरदेव ने रूप-सौंदर्य चित्रण, काम-केलि का मनोमुग्धकारी चित्रण प्रस्तुत किया है। रासक्रीड़ा में गोपियों के संग कृष्ण की लीला और हरमोहन खंड में मोहिनी के भुवनमोहन विचित्र सौंदर्य को देख काम पीड़ा से उत्तेजित भोलेनाथ शंकर के वर्णन में रति स्थायी भाव का चित्रण कर शंकरदेव ने संयोगावस्था का अनुपम चित्र प्रस्तुत किया है। कीर्तन-घोषा में विरह का भी चित्रण हुआ है। गोपी-उद्धव संवाद और रासक्रीड़ा खंड में विरहिणी गोपियों की मार्मिक स्थिति का चित्रण शंकरदेव ने चित्रित किया है। अंतर्स्पर्शी विरहिणी की प्राय: दस-दशाओं का चित्रों का वर्णन शंकरदेव ने किया है। इस प्रकार भक्ति के लिए शंकरदेव ने शृंगार के उभय पक्षों का चित्रण किया है। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. गोहाँइ, हीरेन. शंकरदेव संदर्शन. गुवाहाटी : शांति प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ-148
2. गोस्वामी, यतीन्द्रनाथ. कीर्तन-घोषा आरु नाम-घोषा. गुवाहाटी: ज्योति प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1989, पृष्ठ-236
3. वही, पृष्ठ-117
4. वही, पृष्ठ-118
5. वही, पृष्ठ-134
6. वही, पृष्ठ-205
7. वही, पृष्ठ-300
8. वही, पृष्ठ-203
9. शर्मा, नवीनचन्द्र. पूरणि असमीया साहित्यर सुबास. गुवाहाटी: वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1988, पृष्ठ-161
10. गोस्वामी, यतीन्द्रनाथ. कीर्तन-घोषा आरु नाम-घोषा. गुवाहाटी: ज्योति प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1989, पृष्ठ-130
11. वही, पृष्ठ-224
12. वही, पृष्ठ-115
13. वही, पृष्ठ-294
14. वही, पृष्ठ-297
15. वही, पृष्ठ-296
16. वही, पृष्ठ-296
17. वही, पृष्ठ-207
18. वही, पृष्ठ-209
19. वही, पृष्ठ-223

-शोधार्थी, गौहाटी विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग
ई-मेल : barnalibaishya86@gmail.com
फोन - 6001317554

हास्य रस का भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण

✍ प्रियदर्शिनी दास

प्रस्तावना :

रस के आचार्यों ने मनुष्य की जिन मानसिक अवस्थाओं का अनुधावन किया है, उनमें से एक 'हास्य' है। इस तत्व की उत्पत्ति 'हास' नामक स्थायी भाव से हुई है। 'विकृत वचन, कार्य और रूप-रचनाओं के द्वारा सहृदय के मन में उल्लास उत्पन्न करने का नाम 'हास' है।'[1]

मानव समाज अनेक घात-प्रतिघातों से जर्जर है। अनंत समस्याएँ मनुष्य को ग्रसित कर रखती हैं। ऐसी स्थिति में समस्या की मरुभूमि में 'हास्य' मरुद्यान की सृष्टि कर शांति के साथ दीर्घ जीवन प्रदान करता है। प्रसिद्ध हास्य कवि काका हाथरसी ने कहा था –

'भोजन आधा पेट कर, दुगुणा पानी पीउ।
तिगुण श्रम, चौगुण हँसी, वर्ष सौ जीउ।'1

हास्य रस का भारतीय दृष्टिकोण :

भारतीय आचार्यों ने नौ रसों में हास्य का भी तात्विक विवेचन विस्तृत रूप से किया है। भरत मुनि ने अपने 'नाट्य शास्त्र' में इसका विस्तार से वर्णन किया है। उन्होंने हास्य के कारण का वर्णन इस प्रकार किया – 'आँखों के सामने विकृत भेष, आभूषण, धृष्टता, चंचलता, अप्रासंगिक कार्य, विकृत, वचन, व्यंग्य, बक्रदर्शन आदि के माध्यम से 'हास्य रस' की सृष्टि होती है।

'सचषिकृत परवेषालंकार यलौल्यकुहुका सत प्रलाप।
व्यंग्य दर्शन दोषदाहरणादिभिषि भावैरुत्पद्यते।'[3]

आचार्य भरतमुनि ने हास्य का विश्लेषण इस प्रकार किया है –

संचारी भाव –

आलस्य अवहित्था (भाव गुप्त रखना)

औदात्य, नींद, स्वप्न, प्रबोध, असूया आदि हास्य के साथ आनेवाले अन्य भाव हैं –

'व्याभिचारिणश्चास्य आलस्यावहित्थातन्द्रानिद्रस्वप्न प्रबोधासूयादय: ग्लानिशंका ह्यसुयाच श्रमश्चपलता तथा
सुप्त निद्रावहित्थंचल हास्य तावं प्रकृर्त्तिता:।'[4]

रस – 'भरत मुनि ने कहा – श्रृंगार से हास्य रस की सृष्टि होती है।'[5]

वर्ण (रंग)– 'हास्य का रंग सफेद है।'[6]

देवता – 'हास्य के देवता है प्रमथ' (शिवजी के गणसमूह)[7]

स्थायी भाव – 'हास्य रस का स्थायी भाव है 'हास'।'[8]

अनुभाव – 'होठ चबाना, नाक और कपोलों का कंपन, आँखें आंकुचित होना, पसीना पसीना होना, मुँह उज्ज्वल होना और हाथ कंधे के नीचे आना।'[9]

हास्य की सत्ता – 'हास्य रस स्त्री और निम्न वर्गों के लोगों को अधिक प्रभावित करता है।'[10]

अग्निपुराण के अनुसार रस चार प्रकार के हैं, ये हैं – श्रृंगार, रौद्र, वीर और वीभत्स। इन चारों आधार पर अन्य रसों की उत्पत्ति होती है। जैसे – श्रृंगार से हास्य, रौद्र से करुणा, वीर से अद्‌भुत और वीभत्स से भयानक रस की उत्पत्ति होती है –

'श्रृंगारान्जायते हासो रौद्रात् करुणोरस:।
वाराच्चाद्रु मुतनिष्पत्ति: स्थादुवीत्साद्रु भयानक।'[11]

आचार्य धनंजय ने अपने 'दररूपक' में हास्य रस की

परिभाषा इस प्रकार दी है –

'विकृताकृति वागविशेबैरात्मनोत्थ परस वा

हास: स्यात् परिपोषोत्स्य हास्यास्त्रि प्रकृतिस्मृत: ।'[12]

'साहित्यदर्पणकार' विश्वनाथ कविराज ने भरत मुनि को समर्थन कर कहा –

'रतिर्मनोऽ नुकुलेऽथे मनस: प्रवणयितम् ।

पाग्दिवै कृतेश्चतो विकसो हास इष्यते ।'[13]

आचार्य अभिनव गुप्त ने हास्य के विभाव के मूल में अनौचत्य को कारण माना है –

'अनौचित्य प्रवृत्ति कृतमेव हि हास्यवितावत्वम् ।

तच्यानौचित्त सर्वरसानां विभावानु भावदौ सम्भाव्यते ।'[14]

परवर्ती काल के आचार्यों ने पूर्ववर्ती आचार्यों के सिद्धांतों को स्वीकार कर लिया था। हिंदी साहित्य के रीतिकालीन आचार्यों में से केशवदास, पद्मामकर आदि पूर्ववर्ती आचार्यों की परिभाषा को अपनी अपनी भाषा में परिभाषित किया था।

हास्य रस को रस के रूप में स्वीकार न करने वालों को कटाक्ष कर आचार्य हेमचंद्र ने कहा था–आत्मश्लाघा से दूसरों का उपहास करने की प्रवृत्ति पुरुषों का सहजात है –

'स्वात्यनुत्कर्ष मानितया परमुपहासनि ।'[15]

हास्य रस का पाश्चात्य दृष्टिकोण :

अँग्रेजी में हास्य को 'Humour' कहा जाता है। 'Humour' का सूत्र अनेक चिंतकों ने अनेक प्रकार से देने का प्रयास किया है। एनसाइक्लेपीडिया ब्रिटेनिका में इस प्रकार कहा गया है –

''The word (humour) has come to be used more and more exclusively of concious humour and generally of a rather deep and delicate appreciation of the absurdities of others.''[16]

'Humour' शब्द का विश्लेषण पाश्चात्य आलोचकों ने सूक्ष्म रूप से किया है। इस संदर्भ में एनसाइक्लेपीडिया ब्रिटेनिका का दूसरा मत है –

''Humour corresponds to the human nature of humidity and in only more divine because it has for the moment, more sense of mysteries cut corresponds to the divine virtue can belovy to man.''[17]

विश्व के प्रख्यात मनोवैज्ञानिक चिगमन फ्रयेड ने इस संदर्भ में अपना मत इस प्रकार दिया है –

''We know also that the source of pleasure in rhyme alliteration, refrain and other

forms of repetition of similar sounding words in poetry, in due merely to the discovery of merely familiar.''[18]

हेजलिट के अनुसार हास्य की उत्पत्ति अचानक और विपरीत परिस्थिति से होती है, क्योंकि विपरीत परिस्थिति से समन्वय स्थापित करने में कुछ समय की आवश्यकता पड़ती है। इस संदर्भ में उन्होंने कहा है –

''..... laughter may be defined to be the same sort of convulsive and inveduntary movement, occasioned by mere surprise or contrast, before it has time to reconcile its belif to contradictory appearances.''[19]

ईसाई विचारधारा के अनुसार व्यक्ति संपूर्ण रूप से

शुद्ध नहीं होता है। उसमें अनेक कमियाँ होती हैं। अपनी कमियों को सार्वजनीन रूप से स्वीकार करना एक विशेष गुण है। हास्य के माध्यम से कमियाँ नजर में आती हैं और ये मानव जीवन को अधिक सुंदर और आकर्षक बना देती हैं।

निष्कर्ष : साहित्य समाज संस्कार का एक प्रमुख माध्यम है। हास्य रस साहित्य का एक प्रधान अंग है। हास्य के माध्यम से आम जनता को आसानी से आकर्षित किया जा सकता है। इसीलिए विश्व के सभी साहित्यकार अपनी रचनाओं में हास्य रस का प्रयोग करते आए हैं।❑

संदर्भ सूची :

1. डॉ. द्वारिका प्रसाद मित्तल, लघु कुाव्य-प्रदीप, पृ-11
2. डॉ. ज्ञान प्रकाश शर्मा, हिंदी की हास्य-व्यंग्यमयी कविता का सांस्कृतिक विवेचन, पृ-39
3. आचार्य भरत मुनि, नाट्यशास्त्र, षष्ठ अध्याय
4. आचार्य भरत मुनि, नाट्यशास्त्र, सप्तम अध्याय
5. आचार्य भरत मुनि, नाट्यशास्त्र, अ. 6 श्लोक-39
6. आचार्य भरत मुनि, नाट्यशास्त्र, अ. 6 श्लोक-42
7. आचार्य भरत मुनि, नाट्यशास्त्र, अ. 6 श्लोक-44
8. आचार्य भरत मुनि, नाट्यशास्त्र, अ. 6 श्लोक-17
9. आचार्य भरत मुनि, नाट्यशास्त्र, अ. 6 श्लोक-वर्तिक अंश
10. आचार्य भरत मुनि, नाट्यशास्त्र, अ. 6 श्लोक- 51
11. अग्निपुराण 339/908, पृ. 423
13. विश्वनाथ कविराज, साहित्यदर्पण, परिच्छेद 3, पृ. 183
14. हिंदी साहित्य कोश, पृ. 965
15. आचार्य मनोरंजन शास्त्री, साहित्य दर्शन, पृ. 200
16. संपादक-प्रेम नारायण टंडन, हिंदी साहित्य में हास्य और व्यंग्य, पृ. 25
17. हास्य और व्यंग्य पृ. 25-26
18. हास्य और व्यंग्य, पृ. - 31
19. the english comic writers on cut and Humour, p-3

शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय
स्थायी पता : मकान नं. 9, तेतेलिया,
गुवाहाटी-78011, असम
ई-मेल : priyadarshinidas360@gmail.com
मो. 8011671787

आलेख

हिंदी का विस्तृत फलक और कवि नेपाली

✍ रौशन कुमार /डॉ. विश्वजीत कुमार मिश्र

शोध-सार :

गोपाल सिंह नेपाली ने हिंदी के सभी पक्षों का अपनी कविता में वर्णन किया है, जिसका प्रत्येक पद गहन अर्थ से युक्त, विस्तृत एवं विवेचनीय है। उनकी कविता में हिंदी के अतीत की भूमिका की सराहना हुई है तथा वर्तमान में हिंदी की यथास्थिति को समझने की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। साथ ही हिंदी के सुंदर भविष्य के सपने का आह्वान भी है, जो कवि के काव्य-कौशल का प्रतिफल है। वर्तमान समय में राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं, अपितु वैश्विक स्तर पर जन सरोकार की भाषा के तौर पर हिंदी उभर रही है। अनेक चुनौतियों एवं संघर्षों से निपटते हुए तीव्र विकास के प्रवाह में समसामयिक परिस्थितियों से जुड़कर हिंदी स्थापित हो रही है। तथा विभिन्न क्षेत्रों में व्यवहार के साथ-साथ तकनीकी रूप से भी सुदृढ़ हो रही है।

बीज शब्द :

महाकवि, गोपाल सिंह नेपाली, कविता, जनमानस, हिंदी-भाषा, प्राचीन, स्वरूप, विकास, समसामयिक, परिस्थिति, वर्तमान, स्थिति, संविधान, उचित, स्थान, राजनीति, विडंबना ।

विस्तार :

गोपाल सिंह नेपाली प्रेम के वास्तविक कवि हैं। उन्होंने प्रेम की रसधार को सदैव प्रवाहित किया है, चाहे मानवीय प्रेम हो या प्रकृति प्रेम या राष्ट्र प्रेम, इन सभी क्षेत्रों को समान रूप से प्रेममय कर दिया है। हिंदी के प्रति इनका अनूठा प्रेम विस्तृत व व्यापक है। अपनी अनमोल रचनाओं से हिंदी साहित्य भंडार को समृद्ध किया है, जो साहित्य जगत की बड़ी उपलब्धि है। इनके प्रमुख काव्य-संग्रहों में 'उमंग', 'रागिनी', 'पंछी', 'नीलिमा', 'नवीन', 'हिमालय ने पुकारा' आदि शामिल हैं। कुछेक गद्य रचनाओं में भी भली-भाँति अपनी भूमिका निभाई है। सिनेमा के लिए हिंदी में अनेक गीतों की रचना की। 'चित्रपट', 'रतलाम टाइम्स', 'योगी' आदि पत्रिकाओं का कुशल संपादन किया। नि:संदेह कहा जा सकता है कि नेपाली जी का हिंदी में अभूतपूर्व योगदान है, जो चिर अविस्मरणीय है। नेपाली जी की हिंदी रचनाओं से पाठक सदा आनंदित एवं लाभान्वित होते रहे हैं। हिंदी में उनका विपुल साहित्यिक योगदान सराहनीय तो है ही हिंदी भाषा के प्रति जो इनकी व्यापक दृष्टि है, वह भी अनुकरणीय है। हिंदी भारत के जनमन की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है, जो अतीत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों काल में भारतीय जनमानस को एक सूत्र में पिरोने वाली बहुरंगी माला के समान है। यह जन-जन की बोली है। परतंत्र भारत में राष्ट्रीय एकता को स्थापित करने में हिंदी की महती भूमिका थी। भारत जैसे बहुभाषी देश के स्वतंत्रता सेनानियों के लिए एक ऐसी भाषा की आवश्यकता थी, जो पूरे देश के लिए आपसी संवाद का माध्यम बन सके। देश

के सभी क्षेत्रों के संघर्षरत स्वतंत्रता सेनानियों के लिए संपर्क-भाषा के रूप में हिंदी उपयुक्त सिद्ध हुई। एक स्वर में देश के सभी क्षेत्रों के नेताओं ने हिंदी की भूमिका एवं उपयोगिता को हृदय से स्वीकार किया तथा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए देश भर में अनेक संगठनों को सक्रिय किया और संस्थाओं की स्थापना की। राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने के लिए हिंदी के साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं से नव चेतना एवं जागरूकता फैलाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। गोपाल सिंह नेपाली ने हिंदी के सभी पक्षों का अपनी कविता में वर्णन किया है, जिसका प्रत्येक पद गहन अर्थ से युक्त, विस्तृत एवं विवेचनीय है। उनकी कविता में हिंदी के अतीत की भूमिका की सराहना हुई है तथा वर्तमान में हिंदी की यथास्थिति को समझने की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है साथ ही हिंदी के सुंदर भविष्य के सपने का आह्वान भी है, जो कवि के काव्य-कौशल का प्रतिफल है। वर्तमान समय में राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं, अपितु वैश्विक स्तर पर जन सरोकार की भाषा के तौर पर हिंदी उभर रही है। अनेक चुनौतियों एवं संघर्षों से निपटते हुए तीव्र विकास के प्रवाह में समसामयिक परिस्थितियों से जुड़कर हिंदी स्थापित हो रही है तथा विभिन्न क्षेत्रों में व्यवहार के साथ-साथ तकनीकी रूप से भी सुदृढ़ हो रही है। हिंदी के संबंध में नेपाली जी आजादी के दीवानों एवं आजाद भारत में जी रहे सभी जनों के लिए हिंदी की उपयोगिता एवं महत्ता को रेखांकित करते हुए आह्वान करते हैं कि-

दो वर्तमान का सत्य सरल, सुंदर भविष्य के सपने दो
हिंदी है भारत की बोली, तो अपने आप पनपने दो
यह दुखड़ों का जंजाल नहीं, लाखों मुखड़ों की भाषा है
थी अमर शहीदों की आशा, अब जिंदों की अभिलाषा है।[1]

स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी राष्ट्रीय एकता का प्रतीक बन गई थी। सभी क्षेत्रीय भावनाओं से ऊपर उठकर राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी का प्रचार-प्रसार करने के उद्देश्य से प्राय: हर प्रदेश में हिंदी सेवी संस्थाओं की स्थापना की गई। अनेक सामाजिक संगठनों ने हिंदी में काम करना शुरू किया, जिससे विचारों का तेजी से प्रसार हुआ। यह भी सच है कि आज के तथाकथित हिंदीतर प्रदेशों का सभी प्रकार से सराहनीय योगदान रहा है। उल्लेखनीय है कि हिंदी पत्रिकाओं की शुरुआत बंगाल से हुई थी। 1826 'उदन्त मार्तण्ड' नामक हिंदी की प्रथम पत्रिका (साप्ताहिक) तथा 1854 में समाचार सुधावर्षण (हिंदी का प्रथम दैनिक) का प्रकाशन कलकता से हुआ। 'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' गुवाहाटी (1938), 'उड़ीसा राष्ट्रभाषा परिषद' जगन्नाथ धाम, पुरी (1937), 'केरल हिंदी प्रचार सभा', तिरुवनंतपुरम (1934), 'गुजरात विद्यापीठ' अहमदाबाद (1920), 'बंबई विद्यापीठ', 'बंबई प्रचार समिति', राजकोट (1944), 'हिंदी विद्यापीठ', देवघर (1929) आदि संस्थाओं की स्थापना स्वतंत्रता संग्राम के एक अंग के रूप में हुई थी। इन संस्थाओं का प्रमुख लक्ष्य राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार-प्रसार करना और स्वदेशी आंदोलन को बल प्रदान करना था। स्वतंत्रता संग्राम की मौलिक शक्ति स्वदेशी आंदोलन में निहित थी। हिंदी अस्मिता की प्रतीक बनकर जन-जन तक पहुँच रही थी।[2] पंजाब से लाला लाजपत राय, महाराष्ट्र से काका साहब कालेलकर, बी.डी. सावरकर, गुजरात से दयानंद सरस्वती, महात्मा गाँधी, दक्षिण भारत से सी. राज गोपालाचारी, अनंत शयनम आयंगर, बंगाल से राजा राममोहन राय, सुभाष चंद्र बोस जैसे देश भर के अनगिनत स्वतंत्रता सेनानियों ने हिंदी के प्रचार-प्रसार में महती भूमिका निभाई। सुभाष चंद्र बोस ने कहा था कि देश की एकता के लिए एक भाषा का होना जितना आवश्यक है, उससे अधिक आवश्यक है-देश के लोगों में देश के प्रति

विशुद्ध प्रेम तथा अपनापन का होना। यदि आज हिंदी मान ली गई है, तो वह अपनी सरलता, व्यापकता और क्षमता के कारण। वह किसी प्रांत विशेष की भाषा नहीं है, बल्कि सारे देश की भाषा है।[3] गाँधी जी ने 18 अगस्त, 1906 को 'इंडियन ओपिनियन' नामक अपनी पत्रिका में 'इंडियन वर्ल्ड' नामक पत्रिका के संपादक का हवाल देते हुए लिखा था कि जब तक भारत के विभिन्न प्रदेश में रहने वाले भारतीयों में से ज्यादातर लोग एक ही भाषा नहीं बोलते, तब तक वास्तविक रूप से भारत एक राष्ट्र नहीं बन सकता। विभिन्न प्रदेशों में अँग्रेजी बोलने वाले लोग मिल जाते हैं, किंतु उनकी संख्या बहुत थोड़ी है, और हमेशा थोड़ी ही रहेगी। इसलिए यह संभव नहीं कि अँग्रेजी के जरिए भारत एक राष्ट्र बन जाए। अत: भारतीयों को कोई भारत की ही भाषा पसंद करनी पड़ेगी।[4] रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी 1908 में हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने की सलाह दी थी। उन्होंने कहा था – यदि हम प्रत्येक भारतीय नैसर्गिक अधिकारों के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं, तो हमें राष्ट्रभाषा के रूप में उस भाषा को स्वीकार करना चाहिए, जो देश के सबसे बड़े भूभाग में बोली जाती है और जिसे स्वीकार करने की सिफारिश महात्मा गाँधी ने हमलोगों से की है। इसी विचार से हमें एक भाषा की भी आवश्यकता है, और वह हिंदी है ।[5] स्वतंत्रता-सेनानियों के लिए हिंदी का विशेष महत्व रहा है, उनके लिए हिंदी बड़ी उम्मीद थी। हिंदी पूरे देश को जोड़ने वाली सुगम सेतु सिद्ध हुई।

'साहित्य' भाषा एवं संस्कृति के उन्नयन एवं संवहन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। साहित्य-सर्जन से भाषा प्रयोगधर्मी होती है, जिससे उसका विकास होता है। उसमें भी उपयोगी एवं आवश्यक रचनाओं की ग्रहणशीलता अधिक होती है, जिससे साहित्य एवं भाषा के प्रसार में वृद्धि होती है। हिंदी में संपूर्ण भारत के राग-रंग की सुगंध समाहित है, इसके विकास में देश के प्रत्येक कोने के साहित्य-सर्जकों की महती भूमिका है, जिसमें विविधता युक्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक छवि आलोकित होती है। साहित्यिक योगदान से हिंदी को समृद्ध करने में तथाकथित हिंदी क्षेत्र के अतिरिक्त हिंदीतर क्षेत्रों के अनेक कवियों ने हिंदी को स्थापित किया है, जिससे साहित्य एवं भाषा को व्यापक एवं विस्तृत झलक मिला। हिंदीतर क्षेत्र के अनेक कवियों की हिंदी की विकास यात्रा में अग्रणी सहभागिता थी, उनका नाम आदर से सदैव लिया जाता रहेगा। नई पीढ़ी के रचनाकर उन विभूतियों से सदैव प्रेरित होती रहेंगे। हिंदी के विकास के प्रारंभिक दौर में जनमानस में संकुचित भावना का अभाव दिखता है। हिंदी को देश के सभी क्षेत्रों के, सभी संप्रदायों के कवियों ने मिलकर सँवारा है। हिंदी देश के अनेक क्षेत्रों के शब्द-संपदा व संस्कृति से समृद्ध हुई है। असम के शंकरदेव, बंगाल के चैतन्य महाप्रभु, गुजरात के नरसी मेहता तथा महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर एवं नामदेव आदि कवियों ने हिंदी भाषा को अपने धर्म व साहित्य का माध्यम बनाया, जिससे उनके विचारों का प्रसार हुआ तथा अधिकाधिक लोग लाभान्वित हूए। वर्तमान समय में भी देश के सभी भागों के साहित्यकारों द्वारा हिंदी में साहित्य-सर्जनाएँ की जा रही हैं, जिसके माध्यम से भारत की अनोखी एवं विविध सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिति के साथ-साथ विचार एवं भावनाओं का प्रसार हो रहा है और उस क्षेत्रों की यथास्थिति से पाठक पूर्णरूपेण अवगत हो रहे हैं। यूँ कहा जा सकता है कि हिंदी न केवल एक भाषा है, बल्कि अनेक भारतीय भाषा एवं संस्कृति का समुच्चय है। नेपाली जी ने पूरे देश की सामासिक-संस्कृति एवं जनभावनाओं से संबंधित अभिव्यक्ति की बात की है, जिसे उन्होंने महसूस किया, उसी बात को अपनी कविता में पिरोने का कार्य भी किया है-

इसमें मस्ती पंजाबी की, गुजराती की है कथा मधुर
रसधार देववाणी की है, मंजुल बंगला की है व्यथा मधुर
साहित्य फलेगा-फूलेगा, पहले पीढ़ा से कंपने दो
हिंदी है भारत की बोली तो अपने आप पनपने दो।[6]

नेपाली जी हिंदी में साहित्यिक उन्नयन के प्रबल आकांक्षी हैं, साथ ही स्वयं उसके उदाहरण भी हैं। वे एक समर्पित साहित्य-सर्जक थे, करीब तीन दशक तक

साहित्यिक चिंतन-सर्जन में संलग्न रहे। साहित्य के प्रति रूचि विकसित करने के लिए प्रेरित करते हैं। अपनी विरासत के संरक्षण, साहित्यिक-पूर्वजों के प्रति आदर एवं कृतज्ञता की भावना से उनका हृदय आप्लावित है, जिसका सम्मान और संरक्षण का मुखर हो कर आह्वान करते हैं। नेपाली जी ने कवि सूर, तुलसी, बिहारी का उल्लेख कर हिंदी साहित्य की स्निग्ध ज्ञानमयी परंपरा की ओर ध्यानाकृष्ट कराते हुए उनके द्वारा सिंचित पौध को निरंतर प्रसार व विस्तार हेतु नई पीढ़ी को यथाशक्ति साहित्य-सर्जना करने के लिए प्रेरित करने वाली वाणी दी है –

प्रतिभा हो तो कृछ सृष्टि करो, सदियों की बनी बिगाड़ो मत

कवि सूर, बिहारी, तुलसी का यह बिरवा नरम उखाड़ो मत

भंडार भरो, जनमन की हर हलचल पुस्तक में छपने दो

हिंदी है भारत की बोली, तो अपने आप पनपने दो।[7]

आजादी के बाद हिंदी अपना वह स्थान नहीं पा सकी, जिसका हकदार वास्तव में थी। आजादी से पहले राजभाषा व राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी के लिए जितना संघर्ष और समर्पण का भाव था, बाद में राजनेताओं में वह नहीं रह पाया। उनपर क्षेत्रीयता की भावना हावी हो गई। दक्षिण भारत के कुछ ऐसे भी व्यक्ति हुए, जो आजादी के बाद हिंदी की उपेक्षा करने लगे, जबकि आजादी के संघर्ष काल में वे बड़े हिंदी-सेवी व समर्थक थे। हिंदी राजनीति का शिकार होती गई। हिंदी को संवैधानिक एवं कार्य-व्यापार में उचित स्थान आज तक प्राप्त नहीं हो सका है। इसके लिए राजनेताओं की इच्छा-शक्ति बहुत हद तक जिम्मेदार है। देश के समक्ष देश की अपनी भाषा का आम जनता की भाषा का समुचित एवं सर्वस्थानिक प्रयोग और उसका उपयोग बढ़ाना बड़ी चुनौती है, अँग्रेजी शासन से मुक्त हुए सात दशक हो गए, उसके बाद भी न जाने कब तक यह संघर्ष जारी रहेगा। देश को अँग्रेजियत से मुक्ति की चाहत है। देश का कार्य-संचालन जनता की समझ की भाषा में करने की जरूरत है। कवि नेपाली को इसकी बड़ी चिंता है। उन्हें हिंदी के सम्मान व शृंगार को बनाए रखने की उम्मीद 'शासन और भाषण' से बेमानी-सी लग रही है। राजनेता के शासन में आ जाने के बाद उनके पास मजबूरियों की लंबी सूची होती है। अँग्रेजी पढ़े-लिखे नौकरशाहों को हिंदी के प्रति अधिक संवेदनशील होना पड़ेगा। राज-काज में हिंदी का उपयोग अँग्रेजी की बैशाखी के बिना व सिर्फ खानापूर्ति के रूप में करने के बजाय वास्तविक रूप में करने की आवश्यकता है।

अफसोस की बात है कि आजादी के इतने वर्षों बाद भी अँग्रेजी का वर्चस्व कायम है। इसका जिम्मेदार आखिर भारतीय ही तो है। विडंबना है कि आजाद भारत की सरकार अँग्रेजी के बिना नहीं चल पा रही है। हिंदी के संबंध में जितनी भी बातें नेपाली जी ने अपनी कविता में कही हैं, वे आज लगभग सात दशक बाद भी उतनी ही प्रासंगिक प्रतीत हो रही हैं। हिंदी जनता की वाणी है, वे इसकी सेवा आम जनता के रूप में करने की आवश्यकता महसूस कर रहे हैं, क्योंकि आम जनता को इसकी महत्ता का अधिक भान है। इसके लिए नेपाली जी की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं –

शृंगार न होगा भाषण से सत्कार न होगा शासन से
यह सरस्वती है जनता की पूजो, उतरो सिंहासन से
तुम इसे शांति में खिलने दो, संघर्ष काल में तपने दो
हिंदी है भारत की बोली, तो अपने आप पनपने दो।[8]

नि:संदेह हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा है, क्योंकि यह पूरे देश के जनमन का समवेत स्वर है, एकता का सूत्र है, राष्ट्र की पहचान है। इस विविधता के सौंदर्य से सुसज्जित भारत जैसे देश के लिए, इस रंग-बिरंगी अनोखी सामाजिक-सांस्कृतिक एवं भाषिक संरचनाओं वाले इस राष्ट्र के लिए हिंदी वरदान है, जिसमें पूरे देश की मधुर ध्वनि की अनुगूँज है। यही वजह है कि देश भर के प्रत्येक क्षेत्र के लोग आपस में सभी भेदों से परे होकर एक-भारतीय की पहचान स्थापित करते हैं। वर्तमान समय के इस वैश्विकरण के दौर में देश से बाहर रहने वाले भारतीयों के हृदय में हिंदी राष्ट्रीय अस्मिता एवं भावनात्मक लगाव का सशक्त माध्यम है। भिन्न भाषा-भाषी को 'हिंदी' आपस में जोड़ने का कार्य करती है। वास्तव में हिंदी गंगा के सदृश्य है, जो सभी भाषा एवं बोलियों को समान रूप से स्थान देती है, जिसमें सबके बीच समन्वय व सहअस्तित्व का गुण मौजूद है। किसी भी भाषा या बोली पर हिंदी का कोई वर्चस्व नहीं है, बल्कि वह पूरक का कार्य करती है। हिंदी की निर्मिति में भारत की अनेक भाषा एवं बोलियों का योग है, इसकी समृद्धि में सभी की शब्दावली की सहभागिता है। इस परिप्रेक्ष्य में नेपाली जी की पंक्तियाँ अत्यंत उपयुक्त हैं –

बढ़ने दो इसे सदा आगे, हिंदी जनमन की गंगा है
यह माध्यम उस स्वाधीन देश का, जिसकी ध्वजा तिरंगा है
हों कान पवित्र इसी सुर में इसमें ही हृदय तड़पने दो
हिंदी है भारत की बोली तो, अपने आप पनपने दो।[9]

वर्तमान समय में हिंदी के समक्ष अनेक चुनौतियाँ हैं, उसके बावजूद हिंदी की स्थिति विस्तृत हो रही है। बोलने वालों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। तकनीकी एवं अंतरजाल के क्षेत्र में हिंदी की उपयोगिता एवं उपस्थिति संतोषजनक है। हिंदी की सामग्री की उपलब्धता में बढ़ोतरी हो रही है। तकनीकी शब्दावली का भी निर्माण हो रहा है, किंतु उसके प्रयोग का अभाव देखा जा रहा है। भाषा की शुद्धता तथा मानक प्रयोग में ह्रास देखा जा रहा है। हिंदी के मौलिक शब्दों के प्रयोग के बजाय अँग्रेजी के शब्दों का प्रयोग ज्यादा किया जा रहा है, जो चिंताजनक है। कुल मिलाकर कहा जाए तो आम लोगों के बीच हिंदी का विस्तार हो रहा है, क्योंकि यह आमजन की बोली है। नेपाली जी इसके प्रति हमेशा आश्वस्त हैं, पर जिस विषय-बंदुओं पर उनकी चिंता थी उनमें सुधार या प्रगति नहीं के बराबर है, वह आज भी वहीं की वहीं पड़ी हैं। वह है राजकाज में समुचित रूप से हिंदी का व्यवहार न होना। राष्ट्र की भाषा होने के बावजूद संवैधानिक मान्यता न मिलना। आवश्यक है कि पूरे देश को एक सूत्र में पिरोने वाली योग्य भाषा को उचित स्थान प्राप्त हो। राष्ट्रभाषा को लेकर कहे गए अनेक विभूतियों का कथन अनुपालनीय है। टी-विजयराघवाचार्य ने कहा था -हिंदुस्तान के सभी जीवित एवं प्रचलित भाषाओं में मुझे हिंदी ही राष्ट्रभाषा बनने के लिए सबसे अधिक योग्य दिख पड़ती है।[10] सन् 1885 में केशवचन्द्र सेन ने एक लेख में लिखा था -भारतीय एकता का उपाय है सारे भारत में एकमात्र भाषा बनाया जाए तो यह काम सहज और शीघ्र सम्पन्न हो सकता है।[11] शासन का कर्तव्य है कि हिंदी समीचीन महत्व के लिए कार्य करे। भारतीय संविधान के अनुच्छेद-351 में

हिंदी भाषा के लिए कुछ विशेष निर्देश दिए गए। इसमें कहा गया है कि संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए तथा उसका विकास करे, जिससे कि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके।

हिंदी की प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना, हिंदुस्तानी और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भाषाओं में प्रयुक्त रूपों, शैलियों, अभिव्यक्तियों को आत्मसात करते हुए और आवश्यकतानुसार, मुख्यत: संस्कृत से और गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि पर भी इस अनुच्छेद में बल दिया गया।[12] इस पर बल देते हुए देश की बड़ी जनभावनाओं का ख्याल किया जाना चाहिए।

गोपाल सिंह नेपाली की सजगता व गंभीरता से युक्त कविता साहित्य-प्रेमी के हृदय को चेतना से भरती है। हिंदी के संबंध में नेपाली जी द्वारा लिखित प्रत्येक पंक्ति व्यापक अर्थ को व्यक्त करती है। ये पंक्तियाँ सदैव जनमानस को अपने तरफ आकृष्ट करती रहेंगी तथा हिंदी की गरिमा बचाए रखने के लिए उन्हें प्रेरित करती रहेंगी। सदियों तक प्रत्येक मानव-हृदय इस शाश्वत संगीत को गुगुनाता रहेगा 'हिंदी है भारत की बोली तो अपने आप पनपने दो'। ❑

संदर्भ-सूची :

1. नंदकिशोर नंदन, गोपाल सिंह नेपाली संकलित कविताएँ, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2013, पृष्ठ संख्या-158
2. हीरालाल बछोतिया, राजभाषा हिंदी और उसका विकास, आर्य प्रकाशन मंडल, दिल्ली, 2012, पृष्ठ-18
3. डॉ. विजय अग्रवाल, हिंदी भाषा अतीत से आज तक, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृष्ठ-95
4. गोपाल राय, हिंदी भाषा का विकास, राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ-195
5. वही
6. नंदकिशोर नंदन, गोपाल सिंह नेपाली संकलित कविताएँ, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2013, पृष्ठ संख्या-158
7. वही, पृष्ठ-159
8. वही,
9. वही, 160
10. संजीव कुमार, लुकेंट पब्लिकेशन, पटना, 2019, पृष्ठ-07
11. हीरालाल बछोतिया, राजभाषा हिंदी और उसका विकास, आर्य प्रकाशन मंडल, दिल्ली, 2012, पृष्ठ-19
12. गोपाल राय, हिंदी भाषा का विकास, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ-218

-हिंदी विभाग
राजीव गांधी विश्वविद्यालय
इटानगर, अरुणाचल प्रदेश

आलेख

असमीया गद्य साहित्य के जनक बैकुंठनाथ भट्टाचार्य

✍ डॉ. नवकांत शर्मा

सार-संक्षेप :

गद्य के विकास से साहित्य को नई दिशा और समृद्धि प्राप्त होती है। विश्व साहित्य जगत में गद्य विधाएँ अत्यंत लोकप्रिय हैं। भारतीय साहित्य में आधुनिकता के आगमन के साथ गद्य साहित्य को नई गति मिली है, परंतु असमीया साहित्य में मध्ययुगीन भक्ति आंदोलन के समय में ही पूर्ण विकसित और व्यवस्थित गद्य साहित्य की रचना हुई। नववैष्णव भक्ति आंदोलन के समय महापुरुषों की अलग-अलग रचनाओं में गद्य का थोड़ा बहुत प्रयोग अवश्य दृष्टिगोचर होता है, परंतु सुसमृद्ध और परिपक्व गद्यकार के रूप में आलोचकों ने बैकुंठनाथ भट्टाचार्य या भट्टदेव को मान्यता दी है। भट्टदेव ने अपने गुरु दामोदर देव के मार्गदर्शन और प्रेरणा से गद्य साहित्य का निर्माण किया। उसी कालखंड में ही गद्य का सृजन करना बहुत महत्वपूर्ण बात रही। प्रस्तुत शोध-आलेख में बैकुंठनाथ भट्टाचार्य के जीवन, व्यक्तित्व और कृतियों पर दृष्टि डालने का यथासंभव प्रयास किया जाएगा। साथ ही असमीया साहित्य के इस महान विभूति की विशाल प्रतिभा और साहित्यिक देन पर भी चर्चा की जाएगी।

बीज शब्द : असमीया, गद्य साहित्य, वैष्णव भट्टदेव।

1. प्रस्तावना :

समग्र असमीया साहित्य को महिमामंडित करने में जिन महान विभूतियों का सर्वाधिक योगदान रहा है, उनमें असमीया गद्य साहित्य के जनक बैकुंठनाथ भट्टाचार्य अग्रणी हैं। भक्तिकालीन समय में ही सशक्त गद्य साहित्य के निर्माण करने वाले भट्टदेव एक वैष्णव भक्त भी रहे। उन्होंने मूल ग्रंथों को आधार लेकर महान ग्रंथों को असमीया भाषा में गद्य की रचना की थी। उनकी विराट प्रतिभा और साहित्यनिष्ठा को मजबूती के साथ विद्वान समाज के सामने प्रस्तुत करना जरूरी है। भट्टदेव असमीया साहित्य के ही नहीं, बल्कि भारतीय साहित्य के भी उच्च कोटि के साहित्यकार हैं। उनके अवदानों को भूला नहीं जा सकता। उनके जीवन और साहित्यकर्म पर व्यापक चर्चा-परिचर्चा की आवश्यकता है।

2. अध्ययन का महत्व :

हरेक कार्य का अपने आप में महत्व होता है। प्रस्तुत निबंध के जरिए हिंदी जगत में असमीया साहित्य के गद्य के जनक भट्टदेव के बारे में तथ्यनिष्ठ जानकारी प्राप्त होगी। साहित्यिक दृष्टि से इस अध्ययन का विशेष महत्व है, क्योंकि इससे सुप्राचीन और सुसमृद्ध असमीया साहित्य के इस महान विभूति के बारे में विस्तृत जानकारी हिंदी में उपलब्ध होगी। इसके जरिए वर्तमान के विद्वान और नई पीढ़ी के शोधकर्ताओं को नई दिशा और सूचना हासिल होगी। प्राचीन काल के साहित्यिक कृतियों पर नई दृष्टि डालना बहुत लाभदायक है। उम्मीद है कि प्रस्तुत अध्ययन के जरिए हिंदी विद्वानजगत को एक नए विषय-वस्तु पर चर्चा करने का अवसर प्राप्त होगा।

3. अध्ययन का शीर्षक :

प्रस्तुत अध्ययन का शीर्षक है : असमीया गद्य साहित्य

के जनक बैकुंठनाथ भट्टाचार्य।

4. अध्ययन का उद्देश्य :

इस अध्ययन का उद्देश्य है :

1. असमीया गद्य साहित्य के उद्‌भव और विकास पर प्रकाश डालना।

2. असमीया गद्य के जनक बैकुंठनाथ भट्टाचार्य के जीवन और कृतियों पर दृष्टि डालना।

3. साहित्यिक दृष्टि से भट्टदेव की रचनाओं पर चर्चा करना।

4. नई पीढ़ी के सामने भट्टदेव की विशाल प्रतिभा और अवदानों को रखना।

5. हिंदी के माध्यम से राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भट्टदेव के साहित्य-कर्मों को तथ्यनिष्ठ रूप में उजागर करना।

5. शोध पद्धति :

प्रस्तुत अध्ययन को संपूर्ण करने हेतु सटिक शोध पद्धति को अपनाया गया है।

मूल रूप से विवरणात्मक और विश्लेषणत्मक शोध पद्धति को अपनाया गया है। विषयवस्तु का सही विवरण और मूल बिंदुओं का तटस्थ साहित्यिक विश्लेषण पर जोर दिया गया है।

6. विश्लेषण एवं निर्वचन :

6.1. जन्म और वंश परिचय :

असम के कामरूप जिलांतर्गत बरनगर इलाके के भेरागाँव में सन् 1558 में बैकुंठनाथ भट्टाचार्य का जन्म हुआ था। भट्टदेव के दादा थे श्रीचंद्र भारती और पिता थे कवि सरस्वती। माता का नाम तारादेवी था। बचपन में गोपालदेव आचार्य के गुरुकुल में आपने शिक्षा ग्रहण की। परवर्ती समय में पाटबाउसी में वैष्णव गुरु दामोदर देव के पास शरण लेकर भागवत नाम-धर्म में दीक्षित हुए। (कामरूपज्योति, पृ. 692)

भट्टदेव ने अपना वंश परिचय देते हुए लिखा है :-

कहे कविरत्न बर ओजा परिनाति
यार पितामह भैला श्रीचंद्र भारती
पिता कवि सरस्वती जगते प्रख्यात
महा शांत, यान्त आछे गुण असंख्यात।
(विष्णु सहस्य नाम, पृ. 6)

सन् 1638 में भट्टदेव का देहावसान हुआ।

6.2. भट्टदेव के साहित्यिक अवदान :

गुरु दामोदर देव की आज्ञा एवं प्रेरणा से भट्टदेव ने अनेक महान काव्य एवं गद्य साहित्य की रचना की थी। उन्होंने संस्कृत एवं असमीया भाषा में अपने साहित्य की रचना की थी।

भट्टदेव ने असमीया में -(I) शरण मालिका (II) गुरु वंशावली (III) प्रसंग माला जैसी साहित्यिक कृतियों का निर्माण किया था। संस्कृत भाषा के मर्मज्ञ भट्टदेव ने दो रचनाएँ संस्कृत में भी की थीं- (क) भक्ति सार और (ख) भक्ति विवेक।

परंतु प्रसिद्धि एवं गुणवत्ता की दृष्टि से भट्टदेव की तीन गद्य साहित्य बड़े ही अनमोल हैं। इन ग्रंथों में भट्टदेव की गद्य शैली एवं विषय-वस्तु का ज्ञान निखर उठा है। उनके तीन सर्वाधिक लोकप्रिय गद्य ग्रंथ हैं - (1) कथा गीता, (2) कथा भागवत (3) कथा रत्नावली।

विशेषकर कथा भागवत ग्रंथ को असमीया सरल गद्य में प्रस्तुत करने हेतु गुरु दामोदर देव के मार्गदर्शन के बारे में भट्टदेव ने इस प्रकार लिखा है :-

'प्रभु दामोदरर आज्ञाये महासंत
श्लोक भाङि भागवत कथा करिलंत।
अभिरोदो स्त्री शुद्धे चांडाले पढ़य
संक्षेपिया कथारूपे कैला महाशय।
(कथा-भागवत)

एक वैष्णव भक्त साहित्यकार और एक सफल गद्यकार के रूप में भट्टदेव की एक और देन को हमेशा स्वीकार किया जाएगा। एक सफल अनुवादक के रूप में भी भट्टदेव का महत्वपूर्ण स्थान है। असमीया गद्य साहित्य को नई दिशा देने वाले बैकुंठनाथ भट्टाचार्य के साहित्यिक अवदानों ने समग्र साहित्य जगत को ही धन्य किया है।

6.3. असमीया गद्य साहित्य के जनक भट्टदेव :

विशिष्ट असमीया विद्वान, इतिहासकार आलोचक डॉ. सत्येंद्रनाथ शर्मा ने असमीया गद्य साहित्य के जनक भट्टदेव के बारे में इस प्रकार लिखा है :-

'महापुरुषों के परवर्ती लेखकों में बैकुंठनाथ भट्टाचार्य या भट्टदेव प्रमुख हैं। ये असमीया गद्य साहित्य के जन्मदाता हैं। उत्तर भारत के प्रांतीय साहित्य में इतने प्राचीन गद्य नहीं मिलते हैं।'

(असमीया साहित्यर समीक्षात्मक इतिवृत्त, पृ. 158)

विशिष्ट विद्वान, अध्यापक डॉ. वाणीकांत काकति ने भी भट्टदेव की गद्य रचना पर अपना मत प्रकट किया है। उनके अनुसार भट्टदेव के गद्य में संस्कृत शब्दों का व्यापक प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। स्थानीय कथ्य भाषा के शब्द और भाषा शैली को भट्टदेव ने गद्य में स्थान नहीं दिया। फिर भी भट्टदेव की गद्य शैली अपूर्व एवं उच्च मानदंड संपन्न है।

भट्टदेव की गद्य रचनका का एक उदाहरण देखा जा सकता है:- यद्यपि तुमि सकलो पापीत करि अत्यंत पापकारी होवा तथापि पाप समुद्रक ज्ञानाग्निरे अनायासे तरिबा येन कष्टसमूहक प्रज्ज्वलित अग्निये भस्म करे तेमने ज्ञानाग्निये प्राबद्ध बिने सकल कर्मते भस्म करे। (कथा गीता, चौथा अध्याय)

भट्टदेव ने वर्णनात्मक, आज्ञासूचक, निषेधमूलक, विस्मयवाचक और प्रश्नवाचक वाक्यों का प्रयोग किया है। भट्टदेव संस्कृत व्याकरण के अच्छे जानकार थे। इसलिए व्याकरणिक दृष्टि से भट्टदेव के गद्य शुद्ध एवं परिपक्व थे।

परंतु यह भी सच है कि भट्टदेव की गद्य भाषा में कथ्य, स्थानीय एवं प्रचलित भाषा को कम महत्व मिला। इसी कारण उच्च कोटि के गद्य होने पर भी सामान्य पाठकों के बीच वह अपेक्षित व्यापक लोकप्रियता नहीं मिली, जो मिलनी संभव थी।

शब्द योजना की दृष्टि से देखें तो भट्टदेव की रचनाओं में मूलत: तत्सम एवं तद्भव शब्दों का प्रयोग हुआ है। कथित शब्द या विदेशी शब्दों का प्रयोग नहीं हुअआ। इस प्रकार भट्टदेव ने एक व्यवस्थित, शुद्ध और मानदंड संपन्न गद्य का प्रयोग किया है।

असमीया गद्य साहित्य के जनक भट्टदेव के साहित्यिक अवदानों को और बारीकी से अध्ययन करने की आवश्यकता है।

7. स्थापनाएँ :

(क) भट्टदेव ने असमीया गद्य साहित्य का मार्गदर्शन किया।

(ख) भट्टदेव ने अपनी रचनाओं में कथ्य भाषा के साथ तत्सम और तद्भव शब्दों का सुंदर प्रयोग किया।

(ग) संस्कृत व्याकरण के मानदंड को ध्यान में रखते हुए भट्टदेव ने गद्य साहित्य की रचना की थी।

(घ) समाज के सभी स्तरों के लोगें ने भट्टदेव की गद्यभाषा को समझा और अपनाया।

(ङ) शब्दयोजना, वाक्य संरचना एवं उपस्थापन शैली की दृष्टि से भट्टदेव की गद्य रचना सफल है।

8. निष्कर्ष :

कुल मिलाकर परिदृश्य यह है कि साहित्य के मर्मज्ञ, गद्य के जादूगर और भक्ति आंदोलन के सशक्त हस्ताक्षर बैकुंठनाथ भट्टाचार्य (भट्टदेव) की उच्च कोटि की साहित्यिक रचनाएँ समस्त भारतीय साहित्य के लिए ही अमूल्य संपद है। उनकी भाषिक दक्षता, सर्जनात्मक परिपक्वता और विद्वता अतुलनीय है, पर यह बात भी सच है कि भट्टदेव जैसे विशाल प्रतिभाशाली रचनाकारों पर अब भी विस्तृत चर्चा-परिचर्चा करने की गुंजाइश है। खासकर शोधार्थियों को इस दिशा में आगे आकर भट्टदेव के साहित्यिक देन पर शोध-कार्य करना चाहिए। संस्कृत और असमीया भाषा के जानकार भट्टदेव को असमीया गद्य साहित्य के जनक के रूप में साहित्येतिहास में हमेशा सादरपूर्वक स्मरण किया जाएगा।❑

ग्रंथ-सूची

1. शर्मा, सत्येंद्रनाथ, असमीया साहित्यर समीक्षात्मक इतिवृत्त
2. शर्मा, गिरीश (संपा), असम वैष्णववादार रूपरेखा
3. फुकन, पंकज (संपा), दामोदर ज्योति
4. शर्मा, कंदर्प (संपा), कामरूप ज्योति
5. बरा, प्रफुल्ल चंद्र (संपा), ऐतिह्य, असमीया साहित्य
6. गगै, लीला, असमर संस्कृति

-सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
कन्या महाविद्यालय
गुवाहाटी (असम)

आलेख

रमाशंकर 'विद्रोही' के काव्य में व्यक्त युगचेतना

✍ सत्यवन्त यादव

युग एक ऐसी कालवाचक अमूर्त इकाई है, जिसका निर्माण सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों, घटनाओं तथा विचारधाराओं से होता है । समय के सापेक्ष होते हुए भी युग की समय मर्यादा निश्चित नहीं होती, परिस्थितियों के अनुसार युग परिवर्तित होता रहता है। प्रत्येक युग की अपनी अलग पहचान होती है, जिसका बोध साहित्यकार को रहता है । रामचंद्र शुक्ल के कथनानुसार – ''प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।''[1/2] इसीलिए कहा जाता है कि साहित्यकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है और वह युग की यथार्थ पृष्ठभूमि से प्रभाव ग्रहण करके उसे रचनात्मक संगति प्रदान करता है, जिससे उसके साहित्य में युग चेतना का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है।

प्रश्न उठता है कि चेतना क्या है? तो हम कह सकते हैं कि चेतना मनुष्य की वह विशेषता होती है, जो उसे जीवित रखती है और उसे व्यक्तिगत विषय में तथा अपने वातारवरण के विषय में ज्ञान कराती है । इसी ज्ञान को विचार शक्ति (बुद्धि) कहा जाता है। यही विशेषता मनुष्य में ऐसे कार्य का बोध कराती है, जिसके कारण उसे जीवित प्राणी माना जाता है। वहीं मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि चेतन मानस की प्रमुख विशेषता चेतना है अर्थात् वस्तुओं, विषयों तथा व्यवहारों का ज्ञान। दार्शनिक परिभाषा के अंतर्गत चेतना वह तत्व है, जिसमें ज्ञान की, भाव की और व्यक्ति अर्थात् क्रियाशीलता की अनुभूति है। जब हम किसी पदार्थ को जानते हैं तो उसके स्वरूप का ज्ञान हमें प्राप्त होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समय व समाज बदलने के साथ-साथ चेतना के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। गजानन माधव मुक्तिबोध भी कहते हैं कि ''जैसे-जैसे समाज बदलता जाएगा, मानव संबंध भी बदलते जाएँगे तथा चेतना के रूप और स्वरूप में भी परिवर्तन होगा।''[3] प्रश्न उठता है कि चेतना कार्य कैसे करती है? तो हम कह सकते हैं कि चेतना मानव के मस्तिष्क में तीन स्तरों पर सक्रिय रहती है। पहली-ज्ञान के स्तर पर, दूसरी-प्राप्त ज्ञान के अनुसार मन में अनुकूल या प्रतिकूल इच्छा उत्पन्न करने पर और तीसरा-इच्छा अनुसार व्यक्ति को क्रिया करने के लिए करने का होता है, क्योंकि ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया सबसे जटिल होती है और इसी के आधार पर चेतना आगे की क्रिया करती है ।

युग चेतना का क्या अर्थ होता है? हम कह सकते हैं कि युग चेतना का मतलब होता है परिस्थितियों, विचाधाराओं और संदर्भों का बोध। चेतना के कारण ही कोई साहित्यकार किसी भी युग की परिस्थिति को आत्मसात करता है और समाज में बदलाव लाने के लिए अपने सामर्थ्य के अनुसार अपने साहित्य का सृजन करता है और यह कहना उचित भी होगा कि युग की तमाम

कठिनाइयों के बीच उत्पन्न हुआ साहित्य ही सच्चा साहित्य होता है और अपने युगीन परिस्थितियों से प्रभाव ग्रहण करके एक रचनाकार अथवा कलाकार अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन करता है।

विद्रोहीजी के साहित्य में भी युग चेतना अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है। विद्रोही अपने साहित्य में अपने युग से प्रभाव ग्रहण करके जमीन की वास्तविक हकीकत को आवाज प्रदान करते हैं। इसमें काफी हद तक सच्चाई भी है, क्योंकि विद्रोही अपनी कविता में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक समस्याओं के मुद्दे बड़ी गंभीरता के साथ उठाते हैं। प्रणय कृष्ण 'नई खेती' की भूमिका में लिखते हैं कि ''विद्रोही की कविताओं में उनके व्यक्तिगत दुख कहीं नहीं हैं, हर कहीं समूह के ही दुख, तकलीफ, आस्था और मुक्ति के नगमे हैं।''[4] यह सही भी है, क्योंकि विद्रोही ने अपनी कविता में कभी स्वयं को महत्व नहीं दिया ।

उनकी रचना यात्रा का आरंभ आठवें दशक के पश्चात होता है । विद्रोही के आगे सिर्फ मानव इतिहास का सबसे संकटग्रस्त युग ही नहीं है, बल्कि विघटित मूल्यों की निरंकुश अराजकता एवं सांस्कृतिक संकटग्रस्त क्षण में मानव जाति के भाग्य का निर्णय लेने का दायित्व भी उनके ऊपर है। इन सबसे लड़ने में विद्रोही को सफलता तभी प्राप्त हो सकती है, जब उन्हें युगीन परिस्थितियों और अपने परिवेश का भलीभाँति ज्ञान हो। इस चीज से सहमत नहीं हुआ जा सकता है कि विद्रोही को अपने समय और समाज का ज्ञान नहीं था । विद्रोही को अपने युग की पहचान थी, तभी तो वे अपने युग की चुनौती को स्वीकार करते हुए लिखते हैं।

रमाशंकर यादव 'विद्रोही' अपने युग से प्रेरणा ग्रहण करते हैं । उनके काव्य में युग चेतना के विविध आयामों को हम निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत समझ सकते हैं:-

1. राजनैतिक चेतना
2. सामाजिक चेतना
3. आर्थिक चेतना

राजनैतिक चेतना :

रमाशंकर विद्रोही एक प्रगतिशील रचनाकार हैं और अन्य रचनाकारों की तरह वे भी साहित्य को बदलाव का माध्यम स्वीकार करते हैं। यही कारण है कि वे साहित्य और राजनीति को अलग-अलग खाँचे में नहीं रखते, बल्कि मुंशी प्रेमचंद की तरह ही राजनीति को भी साहित्य का अभिन्न हिस्सा मानना पसंद करते हैं। जैसे नागार्जुन कहते हैं कि ''जीवन है राजनीति, राजनीति है जीवन।''[5] ठीक उसी तरह विद्रोही भी जीवन को राजनीति से प्रेरित ही मानते हैं। चूँकि विद्रोही स्वतंत्रता के बाद के कवि हैं, इसीलिए विद्रोहीजी इस बात को समझते थे कि हमने जिस स्वतंत्रता को इतने संघर्ष से प्राप्त किया है, जिसके लिए हमें बहुत कुर्बानियाँ देनी पड़ी थीं, आज उसी स्वतंत्रता पर कुछ लोगों के लोभ और लालच के कारण कितना खतरा मँडरा रहा है। जिस तरीके से आजादी के बाद से सांप्रदायिक शक्तियाँ और तेजी से उभर कर सामने आने लगी हैं, उससे राष्ट्रीय एकता और अखंडता को खतरा पहुँचने लगा है। आजादी के बाद भी और पहले से भी जातिवादी और पृथकतावादी शक्तियों ने देश को कई हिस्सों में बाँटने का प्रयास किया । इन सबके लिए

विद्रोही ने गैर-जिम्मेदार नेतृत्व को उत्तरदायी माना । उनका मानना था कि जिस देश, समय और समाज में हम रह रहे हैं, उसे मुट्ठी भर लोग अपने शासन में रखने के लिए तमाम हथकंडे अपना रहे हैं और ऐसा करके वे देश की एकता और अखंडता को नुकसान पहुँचा रहे हैं। जो लोग इसे अपने अधीन करना चाहते हैं, उनकी साम्राज्यवादी और सामंतवादी नीति को हमें समझना होगा। उस राजनीति के पीछे की अवधारणा को ही लक्ष्य बनाकर विद्रोही कहते हैं कि -

''साम्राज्य आखिर साम्राज्य ही होता है
चाहे वो रोमन साम्राज्य हो,
चाहे ब्रिटिश साम्राज्य,
या अतिआधुनिक अमेरिकी साम्राज्य ।
जिसका एक ही काम है कि
पहाड़ों पर पठारों पर
नदी किनारे सागर तीरे
मैदानों में, इंसानों की हड्डियाँ बिखेर देना।''[6]

इसमें कोई शक नहीं कि भारत में जिस रामराज्य की कल्पना हम और हमारे पूर्वज सदियों से करते आ रहे हैं वह इसी झूठ की नींव पर टिका है और उस साम्राज्य का आखिरी सच वही है, जिसे विद्रोही अपनी उपर्युक्त पक्तिंयों में दिखाने का प्रयास कर रहे हैं। विद्रोही कहतें हैं कि हमारे देश की पहचान थी अनेकता में एकता। लेकिन धीरे-धीरे हमारे देश में विचारों और विरोधों की एक अलग तस्वीर खींची जाने लगी, जिसमें समानता, स्वतंत्रता और बंधुता जैसे मूल्य गायब हो गए। अब समानता पर बात नहीं होती, सामजिक न्याय पर बात नहीं होती, बल्कि अब गाँधी के देश में दंगाई लोगों का आतंक दिखने लगा है । अपनी कविता 'कथा देश की' में विद्रोही भारत की इस विभीषिका का चित्रण भी करते हैं:-

''यह हादसा है
यहाँ से वहाँ तक दंगे
जातीय दंगे
साम्प्रदायिक दंगे
क्षेत्रीय दंगें
भाषाई दंगे
यहाँ तक की कबिलियाई दंगे
आदिवासियों और वनवासियों के बीच दंगे
यहाँ राजधानी दिल्ली तक होते हैं।''[7]

विद्रोही की कविताएँ अपने समय की राजनीति से सीधे-सीधे टकराती हैं। इसीलिए वे अपनी कविताओं में नेताओं के द्वारा किए गए फरेब का पर्दाफाश करते हैं। उनकी कविताओं में रामराज्य के मानवीय स्वप्न और जनता के दमन का जो वीभत्स इतिहास है जिसे वे बड़ी चतुराई के साथ जनता के सामने, देश के सामने लाने का प्रयास करते दिखाई पड़ते हैं।

''मुझे यह अभागा देश
कालिंदी की तरह लगता है
और ये सरकारें
कालिया नाग की तरह।''[8]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विद्रोही की कविताएँ, विद्रोही की राजनीतिक चेतना को तो स्पष्ट रूप से रेखांकित करती ही हैं और इसके साथ ही साथ राजनीति के वीभत्स रूप से भी पाठकों को अवगत कराती चलती हैं ।

सामाजिक चेतना :

विद्रोही मूलत: उत्तराधुनिक युग के कवि हैं। इस समय समाज में और देश में सामाजिक वैषम्य चरम सीमा पर व्याप्त था । समाज में जातिगत शोषण के अलवा आर्थिक शोषण का भी बोलबाला था। एक ओर ऐसे लोग थे, जो गरीबों का शोषण करते थे, जिनमें पूँजीपति, व्यापारी, सामंतवादी और ब्राह्मणवादी सोच के लोग थे और दूसरी तरफ ऐसे लोग थे जिनके पास दो वक्त की रोटी नहीं थी, सम्मान नहीं था, अधिकार नहीं था। ऐसे लोगों में किसान, स्त्री, मजदूर और पिछड़े एवं दलित तबके के लोग आते हैं। यही कारण है कि विद्रोही के काव्य में जहाँ एक तरफ पूँजीवादी, सामंतवादी शक्तियों के खिलाफ आक्रोश भरा पड़ा है, वहीं दूसरी ओर निम्न वर्ग, दलित-पिछड़े, किसान व मजदूर के लिए करुणा का भाव भी विद्यमान है।

''जब भी किसी
गरीब आदमी का अपमान करती है

ये तुम्हारी दुनिया,
तो मेरा जी करता है
कि मैं इस दुनिया को
उठाकर पटक दूँ !
इसका गूदा-गूदा छिटक जाए।'' [9]

विद्रोहीजी के समय किसानों और मजदूरों के साथ-साथ स्त्रियों एवं हाशिए के समाज की दयनीय दशा थी, जहाँ मजदूरों को दो वक्त की रोटी नसीब नहीं थी। वहीं हाशिए के लोगों को समाज में इज्जत। विद्रोहीजी पढ़ाई-लिखाई के दौरान ही बहुत से ऐसे आंदोलनों में शामिल हुए, जो किसानों और मजदूरों के हक के लिए चलाए जाते थे।

सामाजिक बंधनों जैसे जातिवाद से मुक्ति और स्त्रियों को दासत्व से मुक्ति के लिए चलाए जाते थे। इसीलिए विद्रोहीजी इन लोगों की सामाजिक स्थिति से भी भलीभाँति परिचित हो गए थे। यही कारण था कि वे हमेशा इनके हक की बात करते नजर आते हैं :-

''मजाक बना रखा है तुमने
आदमी की आबरू का ।''[10]

सामाजिक बंधनों की अगर बात करें तो हम पाते हैं कि भारतीय समाज कई बंधनों में बंधा था। जैसे ऊँच-नीच का भेदभाव, जाति-पाँति व छुआछूत इत्यादि। समाज में एक वर्ग ऐसा था, जो अपने आपको ब्रह्मा के मुख से पैदा होने की बात कहता था और इसी आधार पर अपने को श्रेष्ठ समझता था, वहीं अन्य जातियों को अपने से नीचा दिखाने का प्रयास करता था। इसी को आधार बना कर उसने समाज की अन्य जातियों का भरपूर शोषण किया।

उसने सभी जातियों का कार्य निर्धारित किया और ऐसी शोषणकारी परंपरा को जन्म दिया, जो आज तक व्याप्त है। इसको और अधिक स्पष्ट करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं कि ''भारत में जाति का मसला बहुत जटिल है, जो पिछले तीन हजार वर्षों के लंबे ऐतिहासिक काल में जटिल से जटिलतर होता गया है।''[11] विद्रोही को अपने समाज की सामाजिक स्थिति का पूरा ज्ञान था और पढ़ाई-लिखाई के दौरान उन्होंने इस दर्द को झेला भी था। इसीलिए विद्रोही इस सामाजिक व्यवस्था का विरोध करते हुए लिखते हैं कि :-

''मर्यादा पुरुषोत्तम के वंशज
उजाड़ कर फेंक देते हैं शम्बूकों का गाँव
और जब नहीं चलता इससे भी काम
तो धर्म के मुताबिक
काट लेते हैं एकलव्यों का अंगूठा।''[12]

विद्रोही की आर्थिक चेतना इस समाज को लेकर बहुत अधिक पैनी है। वो शोषण के प्रत्येक रास्ते पर अपनी पैनी निगाह जमाए हुए हैं। विद्रोही लोगों के शोषण के लिए राजनैतिक और पूँजीवादी व्यवस्था को जिम्मेदार मानते हैं और उन्हीं के खिलाफ अपनी आवाज को मुखर करते नजर आते हैं। इसके साथ-ही-साथ पूरे देश के लोगों के सामने असमान आर्थिक बँटवारे के रहस्य को भी उजागर करते हैं । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विद्रोही अपने देश और समाज में हो रहे शोषण से भलीभाँति परिचित थे और शोषित जनता की आवाज को ऊपर उठाकर उनकी वास्तविकता को दुनिया के सामने रखना चाहते थे।

विद्रोही की सामाजिक चेतना न सिर्फ शोषित वर्गों की आवाज बनती है, बल्कि उन्हें अपने अधिकारों के लिए लड़ने की प्रेरणा भी देती है। विद्रोही अपनी कविताओं में उस सामंतवादी और ब्राह्मणवादी मानसिकता पर भी कुठाराघात करते नजर आते हैं, जो हाशिए के समाज के विकास में सबसे बड़ी बाधा है और इस तरह से वे तमाम सामाजिक विसंगतियों को दूर करने की बात करते हुए शोषित-पीड़ित जनता की आवाज बनते हैं ।

आर्थिक चेतना :

अर्थ जीवन का मूल आधार है। दूसरे शब्दों में कहें तो व्यक्ति की सुख-सुविधा का आधार अर्थ ही है। अर्थ के आधार पर ही समाज में व्यक्ति को वर्ग विशेष में विभाजित किया जाता है। जो व्यक्ति ज्यादा धनवान है उसे उच्च वर्ग में तथा जो ज्यादा गरीब है उसे निम्न वर्ग में तथा जो सामान्य आय वाले व्यक्ति हैं उन्हें मध्य वर्ग में रखा जाता है। अर्थ ही वह साधन है, जिसके आधार पर व्यक्ति अपने जीवन को चला पाने में सक्षम होता है। इसी के माध्यम से कोई व्यक्ति अपनी मूलभूत आवश्कताओं की पूर्ति करता है तथा समाज में अपनी पहचान बनाता है। अगर हमें विद्रोही की आर्थिक चेतना को समझना है तो सबसे पहले उस समय देश की आर्थिक स्थिति की पहचान अवश्य करनी पड़ेगी, समाज के आर्थिक स्वरूप को समझना होगा । तभी हम विद्रोही की आर्थिक चेतना को समझ सकते हैं।

सदियों से लेकर आज तक न सिर्फ मनुष्य का मानसिक व शारीरिक शोषण हुआ, बल्कि मजदूर, किसानों का आर्थिक शोषण भी होता रहा, जिससे मजदूर व किसान अनभिज्ञ रहे। इतना ही नहीं, जिस व्यवस्था की चक्की में ये पिसते रहे उस पूँजीवादी व्यवस्था ने इनके मरने के बाद भी इनका पीछा नहीं छोड़ा और उसने मुर्दे के कफन से लेकर औरतों के तन तक को बेचने का काम किया, जिसके कारण इस व्यवस्था से विद्रोही का भरोसा उठ गया था। इसीलिए वे पूँजीवादी शासन की व्यवस्था से खीझ उठते हैं और कहते हैं कि :-

''लेकिन पूंजीवादी समाज की चौपालों
और सामन्तवादी समाज के दलालों !
औरतों का तन और मुर्दे का कफन
बिकता हुआ देखकर
मेरे प्यार का सोता सूख गया।''13

हमारी 70 प्रतिशत जनसंख्या आज भी कृषि पर निर्भर है, लेकिन आजादी के बाद जिस परिवर्तन का सपना सबने देखा था वह कहीं भी दिखाई नहीं देता है और आजादी के 70 साल बाद भी किसान की स्थिति जस-की-तस बनी हुई है। उनकी स्थिति में कभी भी कोई परिवर्तन नहीं आया। आजादी के बाद तमाम सरकारें आईं और गईं, लेकिन किसानों द्वारा उत्पन्न किए गए कच्चे माल की पर्याप्त कीमत उन्हें नहीं दी गई, जबकि उन्हीं के द्वारा उत्पादित किए गए कच्चे माल से बनने वाले सामान को उन्हीं गरीब किसानों को महंगे दामों पर बेचा गया। लेकिन किसी भी सरकार ने कभी ये नहीं सोचा की किसानों को भी खाद-बीज सस्ते दामों पर उपलब्ध करवा दिया जाए, जिसके कारण किसान दिन-प्रतिदिन कर्ज में ही डूबता चला जा रहा है और उसके पास इस कर्ज से उबरने का एक ही माध्यम नजर आता है आत्महत्या । समाज की इसी तंगहाली पर विद्रोही कहते हैं कि :-

''जमे बीज दोगुने दाम पर,
सकल पंच बरबस बोटा था,
क्या बतलाएं क्या जमता था,
मनई सकल साल रोता था।''14

विद्रोही कहते हैं कि यही हमारी विकृत अर्थव्यवस्था का विकास है, जो बाहर से देखने में तो सुंदर है, लेकिन अंदर से झाँकने पर पूरा का पूरा अंधेरा ही है । जो आँकड़े सरकार हमारे सामने रखती है, वास्तव में उनका हकीकत कुछ और ही होता है। सरकार जो चित्र किसानों का हमारे सामने रखती है, उसकी हकीकत को विद्रोही अपनी कविता 'कन्हई कहार' में दिखाते हुए कहते हैं कि:-

''रुकी हुई सांसों में खौल उठती हैं खांसियां
अंतड़ियाँ हूम देती हैं, काले कोयले जैसा खून ।
एक कमजोर हाथ के सहारे टिक जाती है चेतना,
और आँखों में घूम जाती है एक लम्बी जिन्दगी।''15

इस शोषणकारी तंत्र के विरोध के साथ-साथ विद्रोही जनमानस को भी इसके खिलाफ खड़ा करने की जुगत में लगे रहे। देश में होने वाले आंदोलनों में विद्रोही पहली पंक्ति में नजर आते थे और अपनी कविताओं के माध्यम से उनकी आवाज को कभी दबने नहीं देते थे । वे इस शोषणकारी व्यवस्था के खिलाफ जीवनभर आंदोलन करते रहे और कहते रहे कि :-

''कि चाहे जो हो जाए,
जुल्म की आखिरी सिम्तों को
उनकी आखिरी हदों तक

मिटाया ही जाता रहेगा।''[16]

इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्रोही की आर्थिक चेतना इस समाज को लेकर बहुत अधिक पैनी है। वो शोषण के प्रत्येक रास्ते पर अपनी पैनी निगाह जमाए हुए हैं।

विद्रोही लोगों के शोषण के लिए राजनैतिक और पूँजीवादी व्यवस्था को जिम्मेदार मानते हैं और उन्हीं के खिलाफ अपनी आवाज को मुखर करते नजर आते हैं। इसके साथ-ही-साथ पूरे देश के लोगों के सामने असमान आर्थिक बँटवारे के रहस्य को भी उजागर करते हैं ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विद्रोही अपने देश और समाज में हो रहे शोषण से भलीभाँति परिचित थे और शोषित जनता की आवाज को ऊपर उठाकर उनकी वास्तविकता को दुनिया के सामने रखना चाहते थे। अगर जनता के प्रति उनकी इस प्रतिबद्धता को ध्यान से देखें तो हम कह सकते हैं कि हाँ, विद्रोही जी सच्चे अर्थों में जनवादी कवि थे, जो अपने समय की सभी विसंगतियों से परिचित थे। ❑

संदर्भ सूची :

1. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र (2009), हिंदी साहित्य का इतिहास, नई दिल्ली, प्रकाशन संस्थान, पृष्ठ संख्या -21
2. मुक्तिबोध (2008) नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-113
3. यादव, रमाशंकर 'विद्रोही' (2011) नई खेती, इलाहाबाद, सांस्कृतिक संकुल, जन संस्कृति मंच पृष्ठ संख्या -vi
4. यादव, रमाशंकर 'विद्रोही' (2011) नई खेती, इलाहाबाद, सांस्कृतिक संकुल, जन संस्कृति मंच पृष्ठ संख्या -139
5. पंडित, डॉ. जगन्नाथ, नागार्जुन का काव्ययुग और अंत:सम्बन्धों का अनुशीलन, पृष्ठ संख्या -127
6. यादव, रमाशंकर 'विद्रोही' (2011) नई खेती, इलाहाबाद, सांस्कृतिक संकुल, जन संस्कृति मंच पृष्ठ संख्या -15
7. यादव, रमाशंकर 'विद्रोही' (2011) नई खेती, इलाहाबाद, सांस्कृतिक संकुल, जन संस्कृति मंच पृष्ठ संख्या -49
8. यादव, रमाशंकर 'विद्रोही' (2011) नई खेती, इलाहाबाद, सांस्कृतिक संकुल, जन संस्कृति मंच पृष्ठ संख्या -60
9. यादव, रमाशंकर 'विद्रोही' (2011) नई खेती, इलाहाबाद, सांस्कृतिक संकुल, जन संस्कृति मंच पृष्ठ संख्या -126
10. यादव, रमाशंकर 'विद्रोही' .(2011). नई खेती, इलाहाबाद, सांस्कृतिक संकुल, जन संस्कृति मंच पृष्ठ संख्या -126
11. वाल्मीकि, ओमप्रकाश (2009) मुख्यधारा और दलित साहित्य, गाजियाबाद, सामयिक प्रकाशन, पृष्ठ संख्या -80
12. यादव, रमाशंकर 'विद्रोही' (2011) नई खेती, इलाहाबाद, सांस्कृतिक संकुल, जन संस्कृति मंच पृष्ठ संख्या -7
13. यादव, रमाशंकर 'विद्रोही' (2011) नई खेती, इलाहाबाद, सांस्कृतिक संकुल, जन संस्कृति मंच पृष्ठ संख्या -120
14. यादव, रमाशंकर 'विद्रोही' (2011) नई खेती, इलाहाबाद, सांस्कृतिक संकुल, जन संस्कृति मंच पृष्ठ संख्या -84
15. यादव, रमाशंकर 'विद्रोही' (2011) नई खेती, इलाहाबाद, सांस्कृतिक संकुल, जन संस्कृति मंच पृष्ठ संख्या - 43
16. यादव, रमाशंकर 'विद्रोही' (2011) नई खेती, इलाहाबाद, सांस्कृतिक संकुल, जन संस्कृति मंच पृष्ठ संख्या -118

-शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

ई-मेल : satyavantvapril@gmail.com

असमीया साहित्य में रामभक्ति के महान गायक माधव कंदली

✍ डॉ. दीपक कुमार गुप्ता

माधव कंदली को असमीया वैष्णव कवियों में उज्ज्वल नक्षत्र मानते हुए लेखिका डॉ. इंदिरा गोस्वामी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रामायण : गंगार परा ब्रह्मपुत्रलोई' में लिखा है- ''कोचबिहार साम्राज्यर रजा महाराज नरनारायणर समसामयिक महान संत कबि शंकरदेवर समयर प्राय: एश बसर आगर वैष्णव असमीया साहित्यर मूल कबिसकलर माजर आटाईतकोई उज्जवल नक्षत्र आसिल माधव कन्दली ।''[1]

भक्ति के प्रसार तथा प्रचार में वैष्णव कवियों या भक्तों का योगदान सर्वोच्च है। वैष्णव कवियों ने राम हो या कृष्ण अथवा विष्णु की भक्ति को जीवन का प्रधान लक्ष्य मानकर उसका प्रचार-प्रसार कर अपने जीवन को धन्य किया तथा भौतिक कल्मष से ग्रस्त समाज का उद्धार भी किया। यही कारण है कि आज सैकड़ों वर्षों बाद भी भक्ति की धारा निरंतर भक्तों तथा समाज के हृदय में व्याप्त है। यही धारा वास्तविक तौर पर समाज का पोषण कर उसे मुक्त कर के उसका उद्धार कर रही है । डॉ. इंदिरा गोस्वामी के अनुसार माधव कंदली ने अपने रामायण में वाल्मीकि रामायण के गौड़ीय संस्करण के संस्कृत भाषा में रचित रामायण का ही अनुकरण किया था। डॉ. गोस्वामी के शब्दों में-''माधव कन्दलिये तेऊँ रचना करा असमीया रामायनत बाल्मीकिर रामायनर गौड़ीय संस्करणर संस्कृत भाषा अनुकरण करिसिल ।''[2]

अनंत कंदली तथा अनेकानेक विद्वानों ने माधव कंदली रामायण की आलोचना करते हुए लिखा है कि यहाँ पर राम का चरित्र अति मानवीय अंकित किया गया है । माधव कंदली के रामायण में राम जहाँ साधारण मनुष्य की भाँति रोते-बिलखते हैं, वहीं लक्ष्मण तथा सीता में भी साधारण मनुष्य की भाँति वार्ता कही गई है। परंतु मेरे विचार में ऐसा शत-प्रतिशत सत्य नहीं है। राम का चरित्र यहाँ पर मनुष्य अवतारी परमात्मा के रूप में ही दिखाया गया है। कंदली के अनुसार राम एक मनुष्य रूप में अवतार लिए साक्षात नारायण हैं। अपने गुण समूहों को महाभारत के कृष्ण की भाँति भले ही विराट रूप दिखाकर प्रमाणित नहीं करते, परंतु शिवधनुष भंग कर परशुराम को परास्त करना तथा बाली समेत समस्त राक्षस कुल का संहार कर पृथ्वी को राक्षसविहीन कर देना तथा सभी पात्रों में राम के प्रति श्रद्धा, प्रेम, भक्ति समर्पण आदि सारी भावनाओं का होना और इंद्र, ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा राम से निवेदन की याचना तथा राम की स्तुति करना यही प्रमाणित करता है कि राम स्वयं परम ब्रह्म हैं । डॉ. इंदिरा गोस्वामी इस विषय पर विचार व्यक्त करते हुए लिखती हैं- ''तदुपरि, कन्दलीर रामायानत भगवान विष्णुर एक उललेखयोग्य भूमिका आसे । एईखन रामायनर बहुतों चरित्र भगवान विष्णुर गभीर भक्त । एठाईत आसे कौशल्याई आनकि उल्लेख

करिसे जे भगवान विष्णुर प्रति थका गभीर भक्तिर बाबेहे तेऊँ रामर दरे एक पुत्र सन्तान लाभ करिसे ।''[3]

डॉ. इंदिरा गोस्वामी यहाँ इस मत का खंडन करती हैं कि माधव कंदली के रामायण में शंकरदेव तथा माधवदेव ने बीच-बीच में नव-वैष्णव भक्तिवाद के प्रचार के लिए विष्णु भक्ति मूलक पदों को जोड़ा है । हाँ, कुछ हद तक जोड़ा गया होगा यह हो सकता है परंतु संपूर्ण रामायण में जोड़ा जाना संभव नहीं है। इसी बात को प्रमाणित करते हुए डॉ. गोस्वामी आगे लिखती हैं- ''एईटो सत्य जे रामक विष्णु अवतार हीसाबे देखुउवाटोउ नववैष्णववादर प्रचार आरू प्रसारर बाबे श्री शंकरदेव आरू श्री माधवदेव मूल रामायनखनत नतुनकोई सन्निविष्ट करिसिल । किन्तु कन्दलीर रामायानतों निर्दिष्ट कीसुमान कथ्यांश आसे, जीबोरत रामक बिष्णुर अवताररूपे इंगित दिया होइसे किन्तु एईबोर खूब संभवत: पिसर समयर सन्निविष्टकरण नहय। आनकि ऐनेकुवा केतबोर ऊपमा आसे जिबिलाके रामक बिष्णुर सोईते आरू सीताक लक्ष्मीर सोईते तुलना करिसे । एइबिलाक एईकारने उल्लखयोग्य जे ऐईबिलाक मूल सृष्टि जेन लागे, शंकरदेव बा माधवदेवे पिसत सन्निविष्ट करा जेन नालागे।''[4]

यहाँ और एक बात उल्लेख करने योग्य है कि मध्यकाल में संपूर्ण भारत में जिस प्रकार से विष्णु, राम या कृष्ण भक्ति की या वैष्णव भक्ति की परंपरा का प्रादुर्भाव हुआ तथा उसका परवर्ती साहित्य तथा कवियों पर प्रभाव पड़ा, यह संभव है कि असम के माधव कंदली भी उससे अछूते न हों। इनमें भी प्रत्यक्ष ना सही, परोक्ष रूप से यह प्रभाव परिलक्षित अवश्य होता है। जिस प्रकार से तुलसीदास पर रामानंद का प्रभाव और अन्य कवियों पर भी अवश्य पड़ा होने का अनुमान भी कोरी कल्पना नहीं हो सकती। डॉ. इंदिरा गोस्वामी ने इसी बात की ओर संकेत करते हुए लिखा है- ''एईदरे आमी धारना करिव पारों जे कन्दिलर रचना उपरत रामनन्दर परोक्षभावे हलेउ किसु प्रभाव आसे।''[5]

इस काव्य में माधव कंदली या शंकर-माधव के वैष्णव भक्ति सम्मिश्रण विषय को छोड़कर अगर हम संपूर्ण काव्य में रामभक्ति विषय पर विचार करें तो यही उत्तम होगा, क्योंकि रामभक्ति ही मूल है। इस महान

ग्रंथ का आधार तथा उद्देश्य भी रामभक्ति की महिमा का प्रसार करना ही है। अत: सभी मतवादों का त्याग कर 'सप्तकाण्ड रामायण' में रामभक्ति विषय पर विवेचना करने का कार्य उत्तम है ।

राम के प्रति भक्ति केवल ऋषि-मुनियों में ही नहीं, बल्कि सभी पात्रों के हृदय में दृढ़ रूप से बसी है। जब कैकेयी द्वारा राम को चौदह वर्ष का वनवास प्राप्त होता है तब लक्ष्मण भी राम के प्रति अपनी भक्ति तथा सेवा भाव को प्रकट कर वन जाने के लिए तैयार हो जाते हैं । जब लक्ष्मण माता सुमित्रा से आज्ञा लेने हेतु जाते हैं तभी आदर्श भक्ति-भावना का परिचय देते हुए सुमित्रा राम के साथ वन जाने के लिए लक्ष्मण को कहती हैं। अपने पुत्र के हृदय में राम के प्रति भक्ति देख सुमित्रा धन्य होकर आशीर्वाद देती हैं। इसी प्रसंग को अयोध्याकाण्ड में माधव कंदली ने इतनी सुंदरता से चित्रित किया है-

''सफल जीवन मोर कल्याण साधिलों। कत जन्म पुण्ये मइ हेन पुत्र पाइलौ ।

उद्धारिलि बंशक साम्फल उतपति । ज्येष्ठ भाइत भैल तोर इमत भकति ।।''[6]

केवल लक्ष्मण, सुमित्रा या सीता के ही हृदय में राम

की भक्ति नहीं थी। राम के प्रति भक्ति एवं प्रेम तो समस्त प्रजा-जनों के भीतर भरी हुई है । राम का विछोह पाकर समस्त प्रजा जैसे जीना ही भूल गई । अपने समस्त कार्यों का त्याग कर केवल राम का ही चिंतन करते प्रजा रोती बिलखती रहती थी। माधव कंदली ने अयोध्याकाण्ड में ही इस मार्मिक बात का सुंदर उल्लेख किया है । यथा-

''एहिमते प्रजाये रामक करे मर्म्म । तेजिल समस्ते लोके यार येन कर्म्म ।

देवरीये देव पुजा करिले बिच्छेद । ब्राहमण सकले न पढय आरो बेद ।

क्षत्रे एरिलेक अस्त्र शस्त्र कर्म्म धर्म्म । वैश्ये एरिलेक कृषि वाणिज्यर कर्म्म ।

शुद्रे एरिलेक सेवा विषादित लोक । पुत्रे मातृ एरिले तेजिल मावे पोक ।

सकले प्रजार भैल असुख आधृत । छत्रिय जातिये तेजिलेक निज वृति ।

देशे देशे प्रजा सबे कान्दे मन्यु करि । सकले नगरी छानि शुनि हरि ।।''[7]

राम की भक्ति ही समस्त शास्त्र की संपत्ति है । इसलिए माधव कंदली राम की भक्ति करने की सलाह देते हैं । वे कहते हैं कि, राम का चरित्र सुनने पर जीव का उद्धार होता है । इसीलिए हरि का स्मरण करना चाहिए । यथा-

''परम अमृत रामर चरित्र सुना सामाजिक यात ।
असार संसार आर आशा एरी करियो रति रामत ।।
रामर भकति एही से संपति समस्ते शास्त्र सम्मत ।
थिर मन करि बोला हरि हरि लागोक जुइ पापत ।।''[8]

माधव कंदली राम-भक्ति को ही जीवन की परम सिद्धि मानते हैं । उनके अनुसार राम के चरण ही उद्धार का एक मात्र सुलभ साधन है । इसीलिए शरीर का मोह न कर राम में प्रीति होना ही सर्वश्रेष्ठ है । कवि कहते हैं कि इससे पहले कि यह मृत्यु मुखी शरीर कब साथ छोड़ दे, यही उचित है कि पहले ही राम की शरण ग्रहण कर लेनी चाहिए । यथा-

''घोर कलिकाल नहि आत भाल रामत बिने भकति।
जीबा कतकाल तेजि आलजाल राम पावे दिया मति ।।''

परम अथिर मनुष्य शरीर परे केती क्षण जानि ।
जन्मर साफल हौक लोक डाकि बोला राम राम बाणी ।।''[9]

माधव कंदली कहते हैं कि इस घोर कलियुग में कोई भी ज्यादा दिन जीवित नहीं रह पाएगा । अत: सारे जंजाल का त्याग कर प्रभु श्री राम के चरणों में मन लगाना चाहिए, क्योंकि यह अस्थिर शरीर कब साथ छोड़े कोई नहीं जानता है । अत: राम के चरणों में अपनी मति को स्थापित करना ही उचित है ।

जब राम दंडक वन में प्रवेश करते हैं तब अत्रिमुनि के आश्रम में जाने पर मुनि बहुत प्रसन्न होते हैं । अत्रि मुनि परम राम-भक्त ऋषि थे। उन्होंने राम को परम ब्रह्म अवतारी रूप में जान लिया था । इसी हेतु दर्शन देने पर अत्रि मुनि अपने जन्म को सफल समझकर राम की पूजा करते हैं। इसी प्रसंग को माधव कंदली ने अरण्य-काण्ड में बड़े ही रोचक ढंग से वर्णन किया है,-

''अत्रिबर हरिष देखिया राघवक । परम ईश्वर मोर आइला आश्रमक ।
आजिसि जानिलो मइ जन्म सफलिलो । ईश्वर पाद-पद्म साक्षाते देखिलो ।।
विधिवते फले जले पूजीया रामक । परम सादरे पूछिलन्त कुशलक ।।''[10]

वन में बिराध राक्षस जब राम-लक्ष्मण और सीता के दर्शन करता है तभी वह समझ जाता है कि यह वही राम हैं, जो स्वयं परम ब्रह्म हैं, जिन्होंने मनुष्य रूप में अवतार लिया है तथा इन्हीं के हाथों वध होकर मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है । अत: राक्षस बिराध मन में हर्षित होकर राम को उकसाता है ताकि वे उसका वध कर मुक्ति दे दें । राम के दर्शन कर वह अपनी भक्ति का वर्णन कुछ इन शब्दों में देता है-

हेनशुनि बिराधर परम हरिष । एहेन्ते से राम मन करि बिमरिष ।
आन हाते मरो मोर पाप अन्त भैल। एही मने गुणि खड्ग तोतलाइबाक लैल ।।''[11]

राम परम ईश्वर हैं । इस बात को मानव तो क्या बड़े-

बड़े ज्ञानी राक्षश भी जानते थे । राम की शक्ति का ज्ञान इन्हें था इसीलिए इन्होनें रावण को भी बहुत समझाया । माल्यवान रावण को समझाता है। राम के चरणों में जाकर सीता को समर्पित करने की बात कहता है । राम की ईश्वरीय शक्ति का आभास पाकर वह भक्ति भाव से राम की गुण राशि का वर्णन रावण के सम्मुख करता है । माल्यवान समझाता हुआ कहता है कि राम-लक्ष्मण नारायण के अवतार हैं । अत: रावण समझ जाए-

''श्री राम लक्ष्मण नारायण अवतार । सागरत सेतु बांधे शकति काहार ।

तोक टक्ङ देखाइ लेक यिटो बालीराय । सियो बीर परिला रामर शरछाय ।।''[12]

लंकाकाण्ड में रावण के युद्ध का वर्णन करने के पश्चात माधव कंदली राम का गुणगान करते हुए राक्षस संहारक श्रीराम को प्रणाम करते हैं । वे कहते हैं कि राम के चरणों को छोड़कर उनकी कोई गति नहीं है-

''नमो नमो राम राक्षसर अंतकारी । देवर देवता आदि पुरुष मुरारी ।

गति मोर नाही बीने तोमार चरणे । बोला राम राम सभासद गणे ।।''[13]

निष्कर्ष : अप्रमादी कवि माधव कंदली कृत रामायण भारतीय आर्य भाषा में अपना अलग ही महत्व रखती है। वाल्मीकि रामायण का प्रादेशिक भाषा में प्रथमत: अनुवाद करके कविराज शिरोमणि माधव कंदली ने पूरे असम प्रांत को ही नहीं, अपितु समस्त संसार को रामभक्ति की तथा राम-काव्य सृजन की प्रेरणा दी है ।❑

संदर्भ ग्रंथ-सूची :

1) हाजरिका, पार्थ प्रतिम, अनु. डॉ. इंदिरा गोस्वामी, गुवाहाटी, रामायण :गंगार परा ब्रह्मपुत्रलोई, भवानी बुक्स, प्रथम संस्करण, 2015, मुद्रित, पृ. 56.
2) वही, पृ. 58
3) वही, पृ. 65
4) वही, पृ. 65
5) वही, पृ. 66
6) दत्तबरुवा, हरिनारायण (सम्पा.), गुवाहाटी, सप्तकाण्ड रामायण, दत्तबरुवा पब्लिशिंग कंपनी प्रा. लि., चौदहवाँ संस्करण, 2016, पृ. 132
7) वही, पृ. 136
8) वही, पृ. 139
9) वही, पृ. 135
10) वही, पृ. 180
11) वही, पृ. 183
12) वही, पृ. 341
13) वही, पृ. 364

-मार्फत : लक्ष्मी नारायण गुप्ता
प्रिया गुप्ता मेमोरियल हॉल के नजदीक, गुरुद्वारा रोड
जिला-डाक : बंगाईगांव, पिन : 783380, असम

✍ अज्ञेय

क्योंकि तुम हो

मेघों को सहसा चिकनी अरुणाई छू जाती है
तारागण से एक शांति-सी छन-छन कर आती है
क्योंकि तुम हो।
फुटकी की लहरिल उड़ान
शाश्वत के मूक गान की स्वर लिपी-सी संझा केपट पर अँक जाती है
जुगनू की छोटी-सी द्युति में नए अर्थ की
अनपहचाने अभिप्राय की किरण चमक जाती है
क्योंकि तुम हो।
जीवन का हर कर्म समर्पण हो जाता है
आस्था का आप्लवन एक संशय के कल्मष धो जाता है
क्योंकि तुम हो।
कठिन विषमताओं के जीवन में लोकोत्तर सुख का स्पंदन मैं भरता हूँ
अनुभव की कच्ची मिट्टी को तदाकार कंचन करता हूँ
क्योंकि तुम हो।
तुम तुम हो; मैं-क्या हूँ?
ऊँची उड़ान, छोटे कृतित्व की लंबी परंपरा हूँ,
पर कवि हूँ स्त्रष्टा, द्रष्टा, दाता :
जो पाता हूँ अपने को भट्टी कर उसे गलाता-चमकाता हूँ
अपने को मट्टी कर उसका अंकुर पनपाता हूँ
पुष्प-सा, सलिल-सा, प्रसाद-सा, कंचन-सा, शस्य-सा, पुण्य-सा, अनिर्वच
आह्लाद-सा लुटाता हूँ
क्योंकि तुम हो।

✍ अल्हड़ बीकानेरी

खटारा

चढ़ती जवानी मेरी,
चढ़ के उतर गई
ढलती उमरिया ने मारा
मेरे राम जी
स्वर्ण-भसम खाई,
कहाँ लौट के जवानी आई
बाल डाई करके मैं हारा
मेरे राम जी
कानों से यूँ थोड़ा-थोड़ा देता
है सुनाई मुझे
सुनते ही क्यों न चढ़े पारा
मेरे राम जी
आज के जमाने की ये नई-नई
मारुतियाँ
बोलती हैं मुझको खटारा
मेरे राम जी।

बर्थ-डे

बासठवें बर्थ-डे पे अपनी
ही मोरनी को
सीढ़ियों से मैंने था पुकारा
मेरे राम जी
देखते ही कलियाँ गुलाब की
करों में मेरे
मोरनी ने बदला उतारा
मेरे राम जी
सीढ़ियों मैं चार चढ़ा, इतने
में फू पड़ा
माथे से रुधिर का फव्वारा
मेरे राम जी
फूल मेरी मोरनी ने मारा था
मगर, हाय!
गमले समेत दे के मारा
मेरे राम जी।

काबुलीवाला

✍ रवींद्रनाथ ठाकुर

साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज में जो कुछ भी घटित होता है, उसका प्रतिबिंब साहित्य में दिखाई देता है। इस लिहाज से हिंदी कहानी-जगत अत्यंत समृद्ध है। महान रचनाकारों प्रेमचंद, भारतेंदु हरिश्चंद्र, महादेवी वर्मा आदि ने जब अपनी कलम चलाई तो उससे निकले पात्र मानो जी उठे। द्विभाषी राष्ट्रसेवक ने अपने हर अंक में आपके लिए देशी-विदेशी लेखकों की ऐसी एक प्रतिनिधि कहानी प्रकाशित करने का निश्चय किया है ताकि समाज और समाज के बीच एक सेतु बना रहे और रोजमर्रा की व्यस्त जिंदगी में भी आप साहित्य रस का आनंद उठा पाएँ। इस क्रम में इस बार प्रस्तुत है रवींद्रनाथ ठाकुर की कहानी 'काबुलीवाला'।

-संपादक

आ मेरी पांच बरस की लड़की मिनी से घड़ीभर भी बोले बिना नहीं रहा जाता। एक दिन सवेरे-सवेरे बोली, बाबूजी, रामदयाल दरबान है न, वह काक को कौआ कहता है। वह कुछ जानता नहीं न, बाबूजी। मेरे कुछ कहने से पहले ही उसने दूसरी बात छेड़ दी। देखो, बाबूजी, भोला कहता है- आकाश में हाथी सूंड से पानी फेंकता है, इसी से वर्षा होती है। अच्छा बाबूजी, भोला झूठ बोलता है, है न? और फिर खेल में लग गई।

मेरा घर सड़क केकिनारे है। एक दिन मिनी मेरे कमरे में खेल रही थी। अचानक वह खेल छोड़कर खिड़की के पास दौड़ी गई और बड़े जोर से चिल्लाने लगी, काबुलीवाले, ओ काबुलीवाले! कंधे पर मेवों की झोली लटकाए, हाथ में अंगूर की पिटारी लिए एक लंबा-सा काबुली धीमी चाल से सड़क पर जा रहा था। जैसे ही वह मकान की ओर आने लगा, मिनी जान लेकर भीतर भाग गई। उसे डर लगा कि कहीं वह उसे पकड़ न ले जाए। उसके मन में यह बात बैठ गई थी कि काबुलीवाले की झोली के अंदर तलाश करने पर उस जैसे और दो-चार बच्चे मिल सकते हैं।

काबुली ने मुस्कुराते हुए मुझे सलाम किया? मैंने मिनी के मन से डर दूर करने के लिए उसे बुलवा लिया। काबुली ने झोली से किशमिश और बादाम निकालकर मिनी को देना चाहा, पर उसने कुछ न लिया। डरकर वह मेरे घुटनों से चिपट गई। कुछ दिन बाद, किसी जरूरी काम से मैं बाहर जा रहा था। देखा कि मिनी काबुली से खूब बातें कर रही है। मिनी की झोली बादाम-किशमिश से भरी हुई थी।

काबुली प्रतिदिन आता रहा। उसने किशमिश बादाम दे-देकर मिनी के छोटे-से हृदय पर काफी अधिकार जमा लिया था। दोनों में बहुत-बहुत बातें होतीं और वे खूब हँसते। रहमत काबुली को देखते ही मेरी लड़की हँसती हुई पूछती, काबुलीवाले, ओ काबुलीवाले! तुम्हारी झोली में क्या है? रहमत हँसता हुआ कहता, हाथी। फिर वह मिनी से कहता, तुम ससुराल कब जाओगी? इस पर उलटे वह रहमत से पूछती, तुम ससुराल कब जाओगे? रहमत अपना मोटा घूँसा तानकर कहता, हम ससुर को मारेगा । इस पर मिनी खूब हँसती।

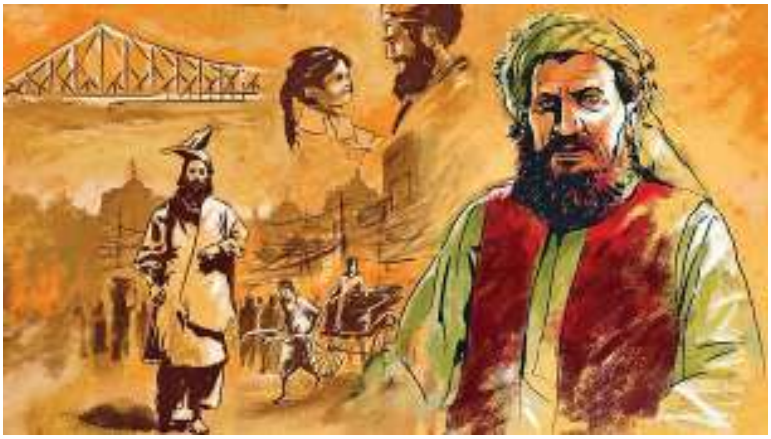

एक दिन सवेरे मैं अपने कमरे में बैठा कुछ काम कर रहा था। ठीक उसी समय सड़क पर बड़े जोर का शोर सुनाई दिया। देखा तो रहमत को दो सिपाही बांधे लिए जा रहे हैं। रहमत के कुर्ते पर खून के दाग हैं और सिपाही के हाथ में खून से सना हुआ छुरा। हुआ यूँ कि हमारे पड़ोस में रहनेवाले एक आदमी ने रहमत से एक चादर खरीदी। उसके कुछ रुपए उस पर बाकी थे, जिन्हें देने से उसने इनकार कर दिया था। बस, इसी पर दोनों में बात बढ़ गई, और काबुली ने उसे छुरा मार दिया। इतने में काबुलीवाले, काबुलीवाले, कहती हुई मिनी घर से निकल आई। रहमत का चेहरा क्षणभर केलिए खिल उठा। मिनी ने आते ही पूछा, तुम ससुराल जाओगे ? रहमत ने हँसकर कहा, हाँ, वहीं तो जा रहा हूँ।

छुरा चलाने के अपराध में रहमत को कई साल की सजा हो गई। काबुली का ख्याल धीरे-धीरे मेरे मन से बिल्कुल उतर गया और मिनी भी उसे भूल गई। कई साल बीत गए।

आज मिनी का विवाह है। मैं अपने कमरे में बैठा हुआ खर्च का हिसाब लिख रहा था। इतने में रहमत सलाम करके एक ओर खड़ा हो गया। पहले तो मैं उसे पहचान ही न सका। अंत में उसकी ओर ध्यान से देखकर पहचाना कि यह तो रहमत है। मैंने पूछा, क्यों रहमत कब आए ? कल ही शाम को जेल से छूटा हूँ, उसने बताया। मैंने कहा, आज घर में एक जरूरी काम है। फिर कभी आना। वह उदास होकर जाने लगा। दरवाजे के पास रुककर बोला, जरा बच्ची को नहीं देख सकता ? शायद उसे यही विश्वास था कि मिनी अब भी वैसी ही बच्ची है। मैंने कहा, बहुत काम है। आज उससे मिलना न हो सकेगा। वह कुछ उदास हो गया और सलाम करके निकल गया। मैं सोच ही रहा था कि उसे वापस बुलाऊँ। इतने में वह स्वयं ही लौट आया और बोला, यह थोड़ा-सा मेवा बच्ची के लिए लाया था। दे दीजिएगा। मैंने पैसे देने चाहे पर उसने कहा, आपकी बहुत मेहरबानी है बाबू साहब ! पैसे रहने दीजिए। फिर ठहरकर बोला, आपकी जैसी मेरी भी एक बेटी है। मैं उसकी याद करके आपकी बच्ची के लिए थोड़ा-सा मेवा ले आया करता हूँ। मैं यहाँ सौदा बेचने नहीं आता।

उसने कुरते की जेब में हाथ डालकर एक मैला-कुचैला मुड़ा हुआ कागज का टुकड़ा निकाला और बड़े जतन से उसकी चारों तह खोलकर दोनों हाथों से उसे फैलाकर मेरी मेज पर रख दिया। देखा कि कागज के उस टुकड़े पर एक नन्हे से हाथ के छोटे-से पंजे की छाप है। हाथ में थोड़ी-सी कालिख लगाकर, कागज पर उसी की छाप ले ली गई थी। अपनी बेटी की इस याद को छाती से लगाकर, रहमत हर साल कलकत्ते के गली-कूचों में सौदा बेचने के लिए आता है। देखकर मेरी आँखें भर आईं । सबकुछ भूलकर मैंने उसी समय मिनी को बाहर बुलाया। विवाह की पूरी पोशाक और गहने पहने मिनी शरम से सिकुड़ी मेरे पास आकर खड़ी हो गई। उसे देखकर काबुली पहले तो सकपका गया। उससे पहले जैसी बातचीत न करते बना। बाद में वह हँसते हुए बोला, लल्ली ! सास के घर जा रही है क्या ? मिनी अब सास का अर्थ समझने लगी थी। मारे शरम के उसका मुँह लाल हो उठा। मिनी के चले जाने पर एक गहरी साँस भरकर रहमत जमीन पर बैठ गया। उसकी समझ में यह बात एकाएक स्पष्ट हो उठी कि उसकी बेटी भी बड़ी हो गई होगी। इन आठ वर्षों में उसका क्या हुआ होगा, कौन जाने ? मैंने कुछ रुपए निकालकर उसके हाथ में रख दिए और कहा, रहमत ! तुम अपनी बेटी के पास देश चले जाओ।❑

প্রবন্ধ

চাওঁতাল জনগোষ্ঠীৰ 'টেবু' আৰু 'টোটেম'

✍ ড° নয়নজ্যোতি দাস

সংস্কৃতি সাৰ ঃ

অসমীয়া জাতি গঠন প্রক্রিয়াত উল্লেখনীয় অৱদান আগবঢ়াই অহা এটা জনগোষ্ঠী হৈছে ঃ চাওঁতাল জনগোষ্ঠী। ২০০১ চনৰ লোকপিয়ল অনুসৰি অসমত চাওঁতাল জনগোষ্ঠীৰ লোকৰ সংখ্যা ২,৪২,৮৬৬ জন। নৃগোষ্ঠীগত বৈশিষ্ট্যৰ ফালৰ পৰা চাওঁতাল সকল হৈছে 'প্ৰোট'-এষ্ট্রালয়ড' আৰু তেওঁলোকৰ ব্যৱহৃত 'চাওঁতালী (Santali) ভাষা হৈছে "এষ্ট্ৰ'-এচিয়াটিক" ভাষা পৰিয়ালৰ অন্তর্গত "মুণ্ডাৰী" ভাষাগোষ্ঠীৰ এটা শাখা ভাৰতবর্ষত চাওঁতাল সকলৰ ইতিহাস দ্রাবিড় তথা আর্যসকলতকৈও প্রাচীন যদিও তেওঁলোকৰ এই ইতিহাস নিজৰ অস্তিত্ব বর্ত্তাই ৰখাৰ বাবে কৰা এক সংঘাতৰ ইতিহাস।

টেবু ঃ

'মেজিক' শব্দটো এটি নৃবৈংনিক পৰিভাষা। চাৰ জেমচ্ ফৰেজাৰৰ মতে বাস্তৱৰ কোনো এটা ঘটনা বা ক্রিয়াৰ অনুকৰণশীল আন এটা কর্মই বাস্তৱত প্রভাৱ পেলাব পাৰে বুলি আদিম মানৱৰ ধাৰণা আছিল আৰু এই ধাৰণাৰ পৰাই মেজিকৰ উৎপত্তি। ফৰেজাৰে 'মেজিক'ক দুটা ভাগত ভগাইছে - সদৃশ বিধানী বা অনুকৃত মেজিক (Homeopathic, Imitative or mimetic magic) আৰু স্পর্শজ মেজিক (Contagious magic) বাস্তৱৰ এটা ঘটনাৰ অনুকৰণ কৰি অনুৰূপ ফল পাবলৈ আশা কৰিলে তাক অনুকৃত মেজিক বুলি কোৱা হয়। উদাহৰণ স্বৰূপে - অসমৰ তোলনী বিয়াৰ সময়ত ছোৱালীজনীক 'জননী' (কাপোৰত কিবা কিবি বস্তু দি বন্ধা টোপোলা) কোলাত দিয়া হয়, উজনী অসমত কেঁচুৱা কোলাত দিয়া হয়, ভৱিষ্যতে সন্তান জন্ম দিয়াৰ আশা কৰি। বড়ো-কছাৰীসকলৰ মাজত ভাত খায়েই বিচনাত বাগৰিব নাপায়, তেনে কৰিলে পথাৰৰ শস্য বাগৰি পৰে বুলি জনবিশ্বাস প্রচলিত। আনহাতে 'স্পর্শজ মেজিক'ক এটা সময়ত নিজৰ সংস্পর্শত থকা বস্তু দূৰলৈ গ'লে তাৰ পৰাই ক্রিয়া কৰিব বুলি ভবা হয়। সন্তান জন্মৰ পাছত গর্ভফুল পুতি থোৱা হয় যাতে তাৰ দ্বাৰা আনে সন্তানৰ অনিষ্ট কৰিব নোৱাৰে।[১]

অংতসাৰে হ'লেও আদিম মানৱে মেজিকৰ যোগেদি এটা কাৰণিক সূত্র মানি লৈছিল আৰু এই ফালৰ পৰা মেজিক এটা প্রাকৃতিক সূত্রৰ তুল্য। এনে মেজিকক ফৰেজাৰে 'তাত্তৱিক মেজিক' আখ্যা দিছে। আনহাতে মেজিকৰ সহায়েৰে নিজৰ ইস্পিত আকাংক্ষা পূৰণার্থে আদিম মানৱে নৃত্য কৰিছিল আৰু গীত গাইছিল আৰু এইদৰেই ভালেমান আচাৰ অনুষ্ঠানৰ সৃষ্টি হৈছিল। এই আচাৰ অনুষ্ঠানসমূহকেই

ফৰেজাৰে ব্যৱহাৰিক মেজিক (Practical Magic) নাম দিছিল। ব্যৱহাৰিক মেজিকক ফৰেজাৰে পুনৰ দুই ভাগত ভাগ কৰিছে- ধনাত্মক মেজিক (Positive Magic) বা ভোজবাজী (Sorcery) আৰু ঋণাত্মক মেজিক (Negative) বা টেবু (Taboo)। কিছুমান আচাৰ আচৰণ পালন কৰি ফলাকাংক্ষা কৰিলে তাক ধনাত্মক মেজিক বোলা হয়, আনহাতে সেই নীতি নিয়ম পালন কৰাৰ পৰা বিৰত থাকি যেতিয়া ফলাকাংক্ষা কৰা হয় তাক ঋণাত্মক মেজিক বোলা হয় অর্থাৎ মেজিকৰ ঋণাত্মক দিশটোৱেই হৈছে টেবু। ইয়াত মানুহে কিছুমান আচাৰ আচৰণ পালনৰ পৰা বিৰত থাকি মনত ভবা ফল পোৱাৰ আকাংক্ষা কৰে। টেবু এটা পলিনেচীয় শব্দ। সামাজিক আচাৰ অনুষ্ঠান, ক্রিয়া কর্ম আদিকে ধৰি লোককৃষ্টিৰ এক বুজন অংশ টেবুৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি গঠিত হৈছে বুলি ক'ব পাৰি। টেবুৰ অসংখ্য নিদর্শন অসমৰ বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ মাজত বিদ্যমান। যেনে - বিধৰাই আন কাৰো হাতে ভাত খাব নাপায়, পত্নীয়ে তেওঁৰ স্বামীৰ নাম উচ্চাৰণ কৰা নিষেধ। সন্তান জন্মৰ সময়ত তিৰোতা মানুহ সাময়িকভাৱে টেবু হৈ পৰা ইত্যাদি।[২]

অসমৰ চাওঁতালসকলৰ মাজতো এনে বহু ধৰণৰ টেবুৰ প্রচলন দেখা যায়। তেওঁলোকে এইবোৰক 'বাৰণ' বুলি কয়। কোনো পুৰুষে তেওঁৰ ভাইবোৱাৰীৰ আৰু তেওঁৰ খুলশালিৰ ঘৈণীয়েকৰ নাম ল'ব নোৱাৰে, কোনো মহিলাই তেওঁৰ দেওৰৰ পত্নীৰ নাম ল'ব নোৱাৰে। ৰাজহুৱা বা ব্যক্তিগত যি ধৰণৰ কথোপকথন নহওক কিয় পত্নীয়ে পতিৰ নাম আৰু পতিয়ে পত্নীয়ে নাম ল'ব নোৱাৰে। দেওৰ আৰু ননদৰ মাজত এনে নিয়ম কঠোৰ ভাৱে পালন কৰা হয় আৰু ইয়াৰ উলংঘন কৰাটো পাপ বুলি গণ্য কৰা হয়। ইয়াৰ ফলত কেৱল ইহজনমেই নহয় পৰজনমতো এই ফল ভোগ কৰিব লাগে বুলি বিশ্বাস কৰা হয়। তদুপৰি তেওঁলোকে যিজন কুলদেৱতাৰ পৰা তেওঁলোকৰ উপাধি পাইছে, সেইজনাৰ নামো উল্লেখ কৰিব নোৱাৰে। উদাহৰণ স্বৰূপে মাল চোৰেণ এজনে ধর্মীয় অনুষ্ঠানত অথবা ৰাজহুৱা স্থানত মাল শব্দটো ব্যৱহাৰ কৰাত নিষেধাংা আছে।

জিহ্ব চোৱেণে জিহ্ব চৰাই মাৰিব নোৱাৰে কাৰণ জিহ্ব চৰায়ে সেই বংশৰ পূৰ্বপুৰুষজনক ঘন অৰণ্যৰ মাজত তৃষ্ণা পুৰাবৰ বাবে বাট দেখুৱাইছিল। একেদৰে শংখ-চোৱেণসকলে শামুকৰ খোলাৰ গলপতা অথবা আ-অলংকাৰ পিন্ধা নিষেধ আৰু শামুক খোৱা অথবা শামুকৰ খোলা ব্যৱহাৰ কৰা নিষেধ।

কোনো গৰ্ভৱতী মহিলাক পশু-পক্ষীৰ প্ৰাণ ল'ব দিয়া নহয় আৰু মৃতদেহ স্পৰ্শ কৰিবলৈ দিয়া নহয়। সেই গৰ্ভৱতীৰ বাবে পঞ্চামৃত ভক্ষণ অনুষ্ঠান পতা দেখা নাযায়। কাৰোবাৰ বিয়োগ ঘটিলে তেওঁ কান্দিব নোৱাৰে। তেওঁক নদী বা জান-জুৰিৰ কাষলৈ যাবলৈ দিয়া নহয় কিয়নো তাত ভূত-প্ৰেত থকা বুলি বিশ্বাস কৰা হয়। তেওঁক খাদ্য-শস্যৰ মুঠিট বান্ধিবলৈ থোৱা তঙালৰ ওপৰৰে পাৰ হৈ যাবলৈ দিয়া নহয়। তেওঁক চোতালত অথবা মুকলি ঠাইত শুবলৈ দিয়া নহয়, কিয়নো অপদেৱতা তেওঁৰ গাৰ ওপৰেৰে পাৰ হৈ যাব পাৰে। তেওঁ তেওঁৰ চুলিত কঠালৰ ফুল গুজি ল'ব নোৱাৰে। কিয়নো পানী নাপায় কঠালৰ ফুল শুকাই যোৱাৰ দৰে মাতৃগৰ্ভতে সন্তান শুকাই যাব পাৰে। তদুপৰি আন কেতবোৰ সাৱধানতাও অৱলম্বন কৰিবলগীয়া হয়। বতাহ-বৰষুণ আৰু বজ্ৰপাতৰ সময়ত এগৰাকী গৰ্ভৱতী মহিলাক ঘৰৰ ভিতৰতে থাকিব দিয়া হয় আৰু কাণত সোপা দি ৰাখিব দিয়া হয় যাতে গৰ্ভত থকা সন্তানে বজ্ৰপাতৰ শব্দ শুনিবলৈ নাপায়, নহ'লে শিশুটি ভয়াতুৰ হৈ জন্ম পাব। তেওঁক পিঠা-পনা বনাবলৈ দিয়া নহয়, কিয়নো তাৰ ফলত শিশুটিৰ কাণত আচোঁৰ পৰিব। তেওঁক কোনো কাৰণতে হালধী ৰুব বা ভাঙিবলৈ দিয়া নহয়, এনে কৰিলে শিশুটিৰ আঙুলি ভাঙি যাব পাৰে বা অতিৰিক্ত আঙুলি গজিব পাৰে বুলি আশংকা কৰা হয়। তেওঁক পাতৰ কাপ তৈয়াৰ কৰিব দিয়া নহয়, তেনে কৰিলে শিশুটিৰ ওঁঠ ফঁটা হৈ জন্ম পাব পাৰে। গৰ্ভাৱস্থাৰ কালত হাতী দেখিলে শিশুটিৰ জিভা দীঘল আৰু কাণ ডাঙৰ বা কুলাহেন হ'ব পাৰে বুলি লোকবিশ্বাস প্ৰচলিত। কেতবোৰ বাধা-নিষেধ পিতৃৰ ওপৰতো আৰোপ কৰা হয়। তেওঁ কোনো জীৱ-জন্তুৰ প্ৰাণ ল'ব নোৱাৰে আৰু মৃতদেহৰ স্পৰ্শলৈ অহাও অনুচিত। চিকাৰত কটা বা বলি দিয়া জীৱ-জন্তুৰ মূৰ খোৱাৰ পৰাও তেওঁ বিৰত থাকিব লাগে।[৩] চাওঁতাল ঘৰসমূহত খিৰিকী ৰখাটো বাৰণ। সন্তান জন্মৰ সময়ত মহিলা গৰাকী সাময়িকভাৱে 'টেবু' হৈ পৰে। প্ৰসৱৰ পিছত গৰ্ভফুল প্ৰসূতি গৰাকী থকা ঘৰৰ মুখ্য দৰ্জাৰ তলত পুতি থব লাগে। তাৰ বাহিৰে আন কোনো ঠাইত গৰ্ভফুল পোতা বাৰণ। যিকোনো পূজাৰ আগনিশা নাইকিয়ে উপবাসে থাকি মাটিত শুব লাগে আৰু পত্নীৰ সৈতে সহবাসত লিপ্ত হোৱাটো নিষিদ্ধ। ভাই শহুৰৰ উপস্থিতিত কোনো মহিলাই বিচনাত বহা নিষিদ্ধ। শ্মশানৰ পৰা অহাৰ পাছত গা নোধোৱাকৈ নিজ গৃহত প্ৰৱেশ নিষিদ্ধ। একে গোত্ৰৰ মাজত বিবাহ নিষিদ্ধ। জাতি বৰ্হিভূত বিবাহ নিষিদ্ধ।

কোনো পুৰুষ-মহিলাকে জাহেৰ থানৰ পৱিত্ৰ বৃক্ষ ৰুবলৈ বা কাটিবলৈ দিয়া নহয়। বিশেষকৈ মহিলাসকলে পৱিত্ৰ বৃক্ষত বগাব নোৱাৰে আৰু ইয়াৰ ঠাল-ঠেঙুলি ভাঙিব নোৱাৰে। কাৰণ এই পৱিত্ৰ বৃক্ষত বঙ্গাই বাস কৰে আৰু বঙ্গাই মহিলাই তেওঁৰ মূৰত উঠাতো মুঠেই পছন্দ নকৰে। যদি কোনো মহিলাই বঙ্গা গছত বগায় তেতিয়া বঙ্গাই মনে বিচৰালৈকে বৰষুণ হয় বুলি বিশ্বাস কৰা হয়। কুল্হী অথবা গাঁওৰ সমূহীয়া পথ সমানেই গুৰুত্বপূৰ্ণ কিয়নো চাওঁতালসকলে গ্ৰাম্য পথক মৌন্ ঝি বুকু গণ্য কৰে। যদিহে ইয়াৰ উপৰিভাগ এৰি যায় তেন্তে তেওঁ সেই গাওঁখন ত্যাগ কৰিব। সেয়ে কোনো লোকে পথত হাল বাব নোৱাৰে, আঁচ টানিব নোৱাৰে বা জোঙা ডাল এফালৰ পৰা সিফাললৈ টানিব নোৱাৰে। একেদৰে কোনো ছোৱালীয়ে ঘৰৰ ছালত উঠিব নোৱাৰে কিয়নো ঘৰৰ ছালত বঙ্গা থাকে বুলি ভবা হয়। বঙ্গাৰ সৈতে জড়িত এনে বাধা নিষেধৰ

লগতে চাওঁতাল মহিলাক পুৰুষে কৰা বহু কামৰ পৰাও বাৰণ কৰা হৈছে। কোনো ছোৱালীয়ে ধনু টানিব নোৱাৰে, গাত খান্দিব নোৱাৰে, কুঠাৰ চলাব নোৱাৰে আৰু বৰশীৰে মাছ ধৰিব নোৱাৰে। ছোৱালীক পুৰুষৰ পোছাক পিন্ধা আৰু বাঁহী বজোৱাতো নিষেধাংা আৰোপ কৰা হৈছে। এগৰাকী ছোৱালীক যখলা ব্যৱহাৰতো বাধা দিয়া হয়। কিছুমান সম্পৰ্কৰ ক্ষেত্রটো ধৰাবন্ধা নিয়ম আছে। এনে সম্পৰ্কীয়সকলক বাহোএওহাড়িয়া[৪] আৰু আজনাৰিয়া[৫] বুলি কোৱা হয়। এই সম্পৰ্ক দুটাৰ ক্ষেত্রতে কেতিয়াও ইজনে আনজনৰ নাম লৈ মাতিব নোৱাৰে।

টোটেম ঃ

টোটেম অভিধাটোৰ উদ্ভাৱক হ'ল জে.এফ.মেকলেনান। পাছলৈ এই অভিধাটোৰ পৰিৱৰ্দ্ধন আৰু উত্তৰণ ঘটায় ডব্লিউ. আৰ. স্মিথ, ভিলহেল্ম উণ্ডট, জেমচ ফ্ৰেজাৰ, ৰেডক্লিফ ব্রাউন, জর্জ থমচন আদি নৃবিংনীসকলে। ওঠৰ শতিকাৰ শেষৰফালে জন লং নামৰ নৃত্ত্ববিধজনে প্রথম 'টোটেম' শব্দটো ব্যৱহাৰ কৰিছিল। 'টোটেম' হৈছে ৰেড ইণ্ডিয়ানসকলৰ 'আজিবুবা' নামৰ জনগোষ্ঠীটোৰ এটা শব্দ যাৰ অর্থ হ'ল প্রতীক বা চিহ্ন। ফ্ৰেজাৰে টোটেমৰ সংংা তলত দিয়া ধৰণে উল্লেখ কৰিছে -

"Totemism is an intimate relation which is suhposed to exist between a group of kindred people on the one side and a species of natural or artificial objects on the other side, which objects are called the totem."[৬]

অর্থ ঃ টোটেম হৈছে সমগোত্রীয় মানুহৰ গোট আৰু আনফালে কৃত্রিম অথবা প্রাকৃতিক এটি প্রজাতিৰ মাজত আন্তৰিক সম্পৰ্ক থকা বুলি কৰা এটা বিশ্বাস।

টোটেম হৈছে এটা জনজাতীয় গোষ্ঠীৰ প্রতিনিধি। ইয়াৰ নামেৰে গোষ্ঠীৰ নাম ৰখা হয় আৰু গোষ্ঠীৰ প্রতিজন সভ্যই ইয়াৰ লগত নিজকে অংগাগীভাৱে জড়িত বুলি ভাবে। উদাহৰণ স্বৰূপে, যিটো গোষ্ঠীৰ টোটেম কুকুৰ, তেওঁলোকৰ প্রত্যেকেই নিজকে কুকুৰৰ বংশধৰ বুলি ভাবে। 'আংগামী নগা'সকলৰ 'থেমভা' গোষ্ঠীয়ে আৰু চেমাসকলৰ 'আৱমী' গোষ্ঠীয়ে নিজকে গাহৰিৰ বংশধৰ বুলি কয়। বড়োসকলৰ মাজত 'মুছাহাৰী' গোটৰ মানুহখিনিয়ে বাঘৰ ভাগিন বুলি ভাবে ইত্যাদি। টোটেমিক জনগোষ্ঠীসমূহ মূলত বৰহিবিবাহমূলক অর্থাৎ নিজৰ গোত্রৰ মানুহক বিয়া নকৰায়। যেনে - বড়োসকলৰ মুছাহাৰী গোটৰ যুৱকে মুছাহাৰী গোটৰ যুৱতীৰ লগত, মিচিং সমাজত পেগু গোষ্ঠীৰ যুৱকে পেগু গোষ্ঠীৰ যুৱতীৰ সৈতে বিয়া নাপাতে।[৭]

অসমৰ চাওঁতালসকলৰ মাজত সর্বমুঠ বাৰটা গোত্রৰ প্রচলন দেখা যায়। উল্লিখিত গোত্রসমূহৰ নামৰ উৎস হৈছে উদ্ভিদ আৰু প্রাণী। এটা গোত্র আৰু তেওঁলোকৰ গোত্রৰ দেৱতাজনৰ সৈতে এক পৱিত্র আত্মিক সম্পৰ্ক থকা বুলি তেওঁলোক বিশ্বাস কৰে। কুলদেৱতাৰ বংশৰ পৰা উদ্ভূত হোৱা বুলি চাওঁতাল সমাজত সকলোতে মানি লোৱা নহয় যদিও গোত্রটোৰ পূর্ব পুৰুষসকলৰ জন্ম বা কর্মৰ সৈতে কুলদেৱতাৰ যোগসূত্র থকা বুলি বিশ্বাস কৰা হয়। হাঁসদা গোত্রৰ সদস্যসকলে দাবী কৰে যে তেওঁলোকেই সকলো গোত্রৰ ভিতৰত উচ্চ স্থান দখল কৰি আছে। তেওঁলোকে প্রথম পূর্বপুৰুষৰ পৰা নিজৰ গোত্রৰ নাম আহৰণ কৰিছে। 'হাঁস' নামটোৱে হাঁহক বুজায় আৰু চাওঁতালী ভাষাত 'ডা' শব্দটোৰ অর্থ হৈছে পানী। সেয়েহে এই গোত্রটো, জগতৰ আদি অৱস্থাৰ সৈতে আৰু আদি পুৰুষৰ সৈতে জড়িত। সৃষ্টিৰ ৰহস্যৰ সৈতে যোগসূত্র থকা বুলি বিশ্বাস কৰা হেতুকে এই গোত্রটোক আটাইবোৰৰ ভিতৰত জ্যেষ্ঠ বুলি গণ্য কৰা হয়। তাৰোপৰি হাঁহ

কেৱল পানীত চৰি ফুৰা চৰাইতে নপৰে। ই মাটিত বাঁহ সাজে আৰু মাটিত খোজ কাঢ়ে, অথচ আকাশত উৰে। হাঁসদা পৰিয়ালৰ সদস্যসকলে এইকেইটা লক্ষণৰে নিজকে সংযোজিত কৰি নিজকে আনতকৈ শ্ৰেষ্ঠ বুলি বিবেচনা কৰে। এই গোত্ৰৰ মূল বিচাৰিলে প্ৰথমে কৃষ্ণসাৰৰ কথাই মনলৈ আহে কিয়নো প্ৰথমটো ফৈদে চিকাৰ কৰা প্ৰাণীবিধেই আছিল কৃষ্ণসাৰ মৃগ। এই প্ৰাণীবিধকে চাওঁতালসকলে দেৱতালৈ অৰ্ঘ্য হিচাপে আগবঢ়াইছিল। তাৰ পাছৰ পৰাই চাওঁতালসকলৰ জন্তু চিকাৰ কৰা এটা পৰম্পৰা হৈ পৰে। ভূমিত চৰা কৃষ্ণসাৰ মৃগ চাওঁতালসকলৰ মাজৰ ধ্বংসৰ কাৰণ হোৱাৰ বিপৰীতে হাঁহক মানৱতা আৰু মনুষ্য জীৱনৰ সৃষ্টিৰ প্ৰতীক হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰা হয়। হাঁসদা আৰু মুমুসকল হৈছে চাওঁতাল জনগোষ্ঠীৰ অন্যতম উচ্চ গোত্ৰ। লোককথা অনুসৰি তেওঁলোকে বহিগোত্ৰীয় বিবাহ কৰোৱা নাছিল আৰু আন্তঃগোত্ৰীয় সম্পৰ্কত বিশ্বাস কৰিছিল। হাঁসদাসকলক বিধান দিওঁতাৰ শাৰীত ধৰা হয় আৰু মুমুসকলক পুৰোহিত আখ্যা দিয়া হয়। কিস্কুসকলে মাছৰোকা চৰাইক তেওঁলোকৰ কুলদেৱতা বুলি মানে আৰু কৰ্মৰ তৃতীয় স্থান অধিকাৰ কৰিছে। তেওঁলোকক ৰজা বুলি ধৰা হয় আৰু সম্পূৰ্ণ ৰাজসিক মৰ্যাদা প্ৰদান কৰা হয়। হেমব্ৰম হৈছে কৰ্মত চতুৰ্থ স্থানত আৰু তেওঁলোকৰ কুলদেৱতা হৈছে তামোল। জনবিশ্বাস অনুসৰি হেমব্ৰম গোত্ৰটো ককালত তামোলৰ ৰচী এডাল লৈ জন্ম পাইছিল। আন কিছুমানে আকৌ তেওঁলোকৰ পূৰ্বপুৰুষ তামোল গছৰ তলত জন্ম পাইছিল বুলিও বিশ্বাস কৰে। তামোল ভিতৰি টান আৰু দৃঢ় হোৱাৰ দৰেই হেমব্ৰমসকলক সততা আৰু নিষ্ঠাৰ প্ৰতীক হিচাপে গণ্য কৰা হয়। মাৰ্দিসকলক ঘাঁহৰ সৈতে সম্পৰ্কীত কৰা হয় আৰু তেওঁলোক বেপাৰ-বাণিজ্যৰ সৈতে সম্পৰ্কীত। চোৰেণসকল দৈনিক সৈনিক অথবা যুঁজাৰু আৰু তেওঁলোকৰ টোটেম হ'ল গ্ৰহপুঞ্জ। টুডুসকল সংগীতং আৰু ফেঁচাক তেওঁলোকৰ কুলদেৱতা হিচাপে গণ্য কৰে।

বাস্‌কেসকল হৈছে ৰান্ধনী আৰু পইতা ভাতৰ সৈতে তেওঁলোকৰ সম্পর্ক। তেওঁলোকে বঙ্গালৈ পইতা ভাত আগবঢ়াইছিল আৰু পইতা ভাত নিজে খোৱা নিষিদ্ধ কৰিব লগা হৈছিল। বেদিয়াসকলৰ কুলদেৱতা হৈছে ভেড়া। বর্তমান কালত তেওঁলোকৰ অস্তিত্ব বিচাৰি পোৱা নাযায়। শেষৰ গোত্র দুটা হৈছে পাউৰিয়া আৰু চোৱেসকল।

এওঁলোকৰ কুলদেৱতা হৈছে কর্মে পাৰচৰাই আৰু সৰীসৃপ। তেওঁলোকৰ পূর্বপুৰুষসকলে সম্ভৱতঃ বহুৰেকীয়া চিকাৰ উৎসৱত কেৱল পাৰচৰাই আৰু সৰীসৃপেই চিকাৰ কৰিছিল। এইদৰে অনুসন্ধান কৰিলে এটা সিদ্ধান্তলৈ আহিব পাৰি যে চাওঁতালসকলে চিকাৰ কৰোতে যিটো প্রাণীক বধ কৰিব পাৰিছিল সেই প্রাণীটোকেই তেওঁলোকৰ কুলদেৱতা হিচাপে থিৰাং কৰিছিল যাতে সেই প্রাণী বিধৰ বিলুপ্তি নঘটে।

কুলদেৱতাসকলৰ প্রতি তেওঁলোকৰ শ্রদ্ধা আৰু আৱেগ ইমানেই শক্তিশালী যে তেওঁলোকে টোটেম বুলি মানি চলা প্রাণীবিধক তেওঁলোকৰ নিজৰ গোত্রৰ সদস্য হিচাপে গণ্য কৰে। আনকি গোত্রৰ সদস্যসকলে টোটেম বুলি গণ্য কৰা প্রাণীবিধৰ মৃতদেহ দেখা পালে শৱটোৰ শেষকৃত্য সমাপন কৰে। আটাইতকৈ গুৰুত্বপূর্ণ কথাটো হৈছে যে একে টোটেমৰ অন্তর্গত সদস্যসকলে নিজৰ গোত্রৰ মানুহৰ সৈতে বৈবাহিক সম্পর্ক স্থাপন কৰা নিষিদ্ধ। টোটেম গণ্য কৰা প্রাণীবিধ খোৱা বা হত্যা কৰাটো নিষিদ্ধ।❑

প্রসংগ টোকা ঃ

১। শিৱনাথ বর্মন, লোককৃষ্টিৰ উৎস পৃ. ১৪-১৫

২। উল্লিখিত, পৃ. ১৬-১৭

৩। W.G. Archer, The Hill of Flutes Ñ Life, Love and Poetry in Tribal India, A Portrait of the Santals, P-159

৪। 'বাহোঞহাৰিয়া' অর্থাৎ এজন পুৰুষ আৰু তেওঁৰ ভাইবোৱাৰী, এজন পুৰুষ আৰু তেওঁৰ খুলশালীৰ ঘৈণী।

৫। 'আজনাৰিয়া' এগৰাকী মহিলা আৰু ভনীজোঁৱাই, এগৰাকী মহিলা আৰু তেওঁৰ ভাইবোৱাৰী।

৬। S.V. Ferreira, Totemism in India P-55

৭। শিৱনাথ বর্মন, লোককৃষ্টিৰ উৎস, পৃ. ৯২

-সহযোগী অধ্যাপক, ইংৰাজী বিভাগ
জনতা মহাবিদ্যালয়, সেৱফাংগুৰী,
কোকৰাঝাৰ, অসম

প্রবন্ধ

অসমৰ কায়স্থ সমাজ ঃ এক আলোচনা

✍ ড° সত্যজিৎ কলিতা

"একবর্ণম ইদং পূর্বম্ বিশ্বম্ আসীৎ যুধিষ্ঠিৰ।
কর্ম ক্রিয়া বিশেষেণ চাতুর্বণ্যম্ প্রতিষ্ঠিতিম্।।[১]

প্রাচীন কালত পৃথিৱীত এক জাতি আছিল, কর্মক্রিয়া বিভিন্নতা অনুসৰি পৰৱর্তী সময়ত বর্ণ বিভাগত বিভাজিত হয়। এই বর্ণ বিভাগ প্রথমতে দুই ভাগত বিভক্ত আছিল শুক্লবর্ণ আৰু কৃষ্ণবর্ণ। এই কাৰণে জাতিক বর্ণ বুলি কোৱা হৈছিল। কালক্রমত হিন্দুসকলক আর্য্য ঋষি মুনিয়ে চাৰি শ্রেণীত বিভক্ত কৰিছিল — ব্রাহ্মণ, ক্ষত্রিয়, বৈশ্য আৰু শূদ্র।

কায়স্থসকল এই চাৰি শ্রেণীৰ কোন শ্রেণীৰ অন্তর্গত তাক লৈ পণ্ডিতসকলৰ মতানৈক্য দেখা যায়। ভাৰতবর্ষৰ বিভিন্ন ঠাইত যিসকল কায়স্থ আছে, তাৰ সৰহ ভাগেই নিজকে ক্ষত্রিয় বুলি পৰিচয় দিয়ে। বঙ্গৰ কায়স্থ সকলেও ইয়াৰ ব্যতিক্রম নহয়। কায়স্থ আচলতে ক্ষত্রিয়ৰ ভিতৰত পৰে নে নপৰে ই এক ডাঙৰ প্রশ্ন।

উত্তৰ ভাৰতৰ হিন্দু ৰজাসকলৰ দিনত 'কায়স্থ' শব্দটো কর্মবাচক ৰূপে ব্যৱহাৰ হৈছিল। যেনে— শর্মকায়স্থ, ভট্টকায়স্থ, সুৰিজ্যষ্ঠ কায়স্থ। আমাৰ অসমতো ইংৰাজ আমোলৰ আগত যিসকলে ল'ৰা-ছোৱালীক দেশীয় ভাষা শিক্ষা দিছিল তেওঁলোকক 'কাইথ' বুলিছিল আৰু সেই শিক্ষাক 'কাইথেলী বিদ্যা' বুলিছিল। এই কাইথসকল প্রায় কায়স্থ জাতিৰ লোকেই আছিল। ইয়াৰ উপৰি কিছুমান ৰাজ বিষয়া, গোসাঁই ঘৰীয়া বিষয়াৰ পদো কাইথ বা কায়স্থ আছিল। যেনে—ভড়াল কাইথ বা ভাণ্ডাৰ কায়স্থ, বৰ কায়স্থ, ভাণ্ডাৰ বৰ কায়স্থ ইত্যাদি।[২]

কায়স্থ শব্দৰ উৎপত্তি সম্পর্কেও পণ্ডিতসকলে মত পোষণ কৰিছে। পাৰস্য ৰজা দে�ৰায়চে নাক্ষি ই ৰুস্তম পর্বতৰ গাত শিলালিপি খোদিত কৰি তেওঁৰ কথা প্রচাৰ কৰিছিল।[৩] তাত তেওঁ ৰজা আৰু ৰাজ্যৰ অর্থত 'ক্ষয়ত' আৰু ক্ষায়থিয় শব্দ ব্যৱহাৰ কৰা জেন্দ ভাষাৰ অবেস্তাৰ ইংৰাজী অনুবাদত দেখা যায়। অধ্যাপক ডাঃ ইৰাক জাহাঙ্গী চোৰাবজী তাৰাপুৰৱালাৰ মতে 'ক্ষায়থিয়' শব্দই পৰৱর্তী কালত 'ক্ষয়তো' হয় আৰু ক্ষয়তো শব্দৰ লগত 'যিম' শব্দ সদায় যোগ থাকে।[৪] 'যিমক্ষয়তো' মানে হ'ল যমৰজা। সংস্কৃত 'প্রস্কালয়' প্রাকৃতত 'পকখাল' সংস্কৃত 'ৰক্ষ' প্রাকৃতত 'ৰক্খ'। এতেকে খয়েত, কয়েত বা কয়েথ শব্দ দেৱভাষা সংস্কৃতত কায়স্থ হোৱা বুলি ধৰিব পাৰি।

কায়স্থ চতুর্বর্ণৰ ভিতৰৰ ক্ষত্রিয়। অতি প্রাচীন কালত ভাৰত আৰু পাৰস্যলৈ অহা আর্য্যসকল মধ্য এচিয়াৰ ইলা পর্বত এৰি অহাৰ আগতে ক্ষত্রিয়ক 'ক্ষয়েত' বা 'খয়েত' বুলিছিল। সেই সময়ত বর্তমানৰ

দৰে জাতি বিভাগ হোৱা নাছিল। 'ক্ষয়েত' শব্দই ৰজাক বুজাইছিল। সেই 'ক্ষয়েত' বা খয়েতেই পৰৱর্তী কালত 'ক্ষত্রিয়' আৰু 'কায়স্থ' শব্দত পৰিণত হয়। পণ্ডিতসকলৰ মতৰ পৰা অনুমান কৰিব পাৰি যে প্রাচীন কায়স্থ জাতি ক্ষত্রিয় জাতিৰ অন্তর্গত। কিন্তু বর্তমান ভাৰতবর্ষৰ বিভিন্ন ঠাইৰ লগতে অসমৰ কায়স্থসকল কোন বর্ণৰ অন্তর্গত সেয়া চিন্তাৰ বিষয়।

স্কন্দ পুৰাণৰ ৩০ শ অধ্যায়ত চন্দ্রবংশীয় কামপতি নৃপতিৰ বংশৰ এক শ্রেণী কায়স্থৰ উৎপত্তিৰ বিৱৰণ পোৱা যায়। এওঁলোক চন্দ্রবংশীয় 'পত্তন প্রভু' নামে খ্যাত। সূর্য্য আৰু চন্দ্রবংশীয় প্রভু কায়স্থসকল নানা শাখাত বিভক্ত তেওঁলোক মহাৰাষ্ট্র আৰু মধ্যভাৰতত বাস কৰে। মহাৰাষ্ট্রত 'ধ্রুৱ প্রভু' নামে এক শ্রেণীৰ কায়স্থ আছে, তেওঁলোকে উত্তানপাদ ৰজাৰ পত্র ধ্রুৱৰ বংশধৰ বুলি পৰিচয় দিয়ে। সূর্যাবংশীয় প্রত্তন প্রভু কায়স্থস কলক ব্রহ্মক্ষত্রিয় বুলি কোৱা হয় তেওঁলোক বর্তমান পঞ্জাৱ, গুজৰাট, কচ্চ আৰু কর্ণাটক প্রদেশত বাস কৰে। বংগদেশৰ বসু বংশটো চন্দ্রবংশীয় ক্ষত্রিয়। এই সম্পর্কে মহাভাৰতত এইদৰে পোৱা যায় 'স চেদি বিষয়ং ৰম্যং বসুপৌৰ বনন্দনঃ।' সম্রাট আকবৰৰ সময়ত ঘোষ, বসু, মিত্র আদি বংশীয় কায়স্থসকলেই বঙ্গদেশৰ তলতীয়া শাসনকর্তা আছিল।

The Suba of Bengal consists of twenty four sarkars and seven hundred eighty seven mahals. The revenue is fifty nine crores eighty four lacs and fifty nine thousand three hundred nineteen dams in money the Zeminders were all Kayasthas.[5]

নাগশংকৰ বা নাগাক্ষ ৰজাই ৪র্থ শতিকাত প্রতাপগড়ত ৰাজধানী পাতি লোহিত্য অতবা লুইতৰ উত্তৰ পাৰত ৰাজত্ব কৰিছিল। তেওঁৰ বংশধৰ মীনাঙ্গ, গজাঙ্গ, শ্রীবঙ্গ আৰু মৃগাঙ্গই প্রায় দুশ বছৰ ৰাজত্ব কৰিছিল। এই নাগক্ষত্রিয় ৰাজবংশটো পৰৱর্তী কালত কায়স্থ ভূঞা বুলি পৰিচিত হৈছিল। পৰৱর্তী কালত জিতাৰীবংশীয় ধর্মপালৰ নাতি সোমপালৰ পৌষ্যপুত্র প্রতাপ সিংহই উজনীৰ এই ভূঞাক মাৰি 'বৰ ৰজা' হৈছিল।[৬] নৰক বংশৰ ৰজা ভাস্কৰ বর্মনৰ পিছত এই বংশৰ শক্তি হ্রাস হয় ফলত ৭ম শতিকাৰ শেষ ভাগত 'স্তম্ভ' ৰাজবংশৰ অভ্যুদয় হয়। স্তম্ভ বংশৰ দিনত কামৰূপলৈ কায়স্থ আৰু চতুর্বেদী ব্রাহ্মণ অহাৰ কথা তাম্র পত্রত উল্লেখ পোৱা যায়। স্তম্ভবংশৰ ৰজাসকলৰ দিনত কামৰূপৰ পশ্চিম খণ্ডত কায়স্থ ঘোষবংশৰ নাম পোৱা যায়। সেই সময়ত কামৰূপৰ পশ্চিম খণ্ডক 'ঢেকুৰ' বুলিছিল।

দ্বাদশ, ত্রয়োদশ আৰু চতুর্দশ শতিকাৰ জিতাৰী, পালবংশৰ ৰজাই কামৰূপত ৰাজত্ব কৰিছিল। এই পালবংশীয় ৰজাসকলে নিজকে ক্ষত্রিয় বুলি পৰিচয় দিছিল কিন্তু তাৰ ভিতৰৰ দুর্লভ নাৰায়ণ, ধর্মপাল আদি ৰজাক ৰামচৰণ ঠাকুৰে গুৰুচৰিতত কায়স্থ বুলি উল্লেখ কৰিছে। জিতাৰী ক্ষত্রিয় ৰজাসকলৰ কিছুমান বংশধৰে পৰৱর্তী কালত 'ভূঞা' নাম লৈ অসমৰ ঠায়ে ঠায়ে ক্ষুদ্র ক্ষুদ্র ৰাজ্য পাতি আছিল। এই সকলৰ কিছুমানে কায়স্থ বুলি পৰিচয় দিয়ে; কিছুমান আকৌ কলিতা শ্রেণীত ভুক্ত হয়।[৭]

চতুর্দশ শতিকাৰ আগভাগত কান্যকুব্জৰ পৰা কিছুমান ব্রাহ্মণ আৰু কায়স্থ লোক আহি দুর্লভ নাৰায়ণ আৰু ধর্মপালৰ ৰাজ্যত আশ্রয় লয়। এইসকলেই প্রাচীন কামৰূপৰ ঠায়ে ঠায়ে বাস কৰে। এওঁলোকৰ ভিতৰতে কায়স্থ ভূঞা চণ্ডিবৰ, শিৰোমণি ভূঞা হয়। ইয়াৰ পিছত আৰু কিছুমান কায়স্থ জাতীয় লোক গৌড়, বঙ্গৰ পৰা এই দেশলৈ আহে। ভূঞাসকলৰ লগত এওঁলোকৰ পূর্বপুৰুষৰ পৰিচয় থকাৰ কাৰণে পিছত অহা কায়স্থ সকলৰ লগত তেওঁলোকৰ বৈবাহিক সম্বন্ধ ঘটে আৰু তেওঁলোকৰ পূব-পুৰুষৰ বিৱৰণ লিখি ৰখা হয়। এই কায়স্থ সকলৰ বংশধৰসকলে বর্তমান সময়লৈকে

কৌলিক আচাৰ পালন কৰি কায়স্থ বুলি গণ্য হৈ আহিছে।

প্ৰাচীন কামৰূপীয় কায়স্থসকলৰ গিৰী, ৰায়, দত্ত, ভূঞা, বসু আৰু ঘোষ এই কেইটা জাতিবাচক উপাধি আছিল, কিন্তু এই দেশত বাস কৰোতে তেওঁলোকে ৰজাঘৰীয়া সীকদাৰ, মজুমদাৰ, গোমস্থা, বৰকায়স্থ, কায়স্থ, চৌধাৰী, পাত্ৰ, ভাণ্ডাৰ কায়স্থ, কাকতী, ভাণ্ডাৰ বৰ কায়স্থ, বৰুৱা আদি নানা উপাধি লাভ কৰে। কায়স্থ সকলৰ যিসকল ধৰ্মচাৰ্য্য তেওঁলোকে ঠাকুৰ, অধিকাৰী, মহন্ত, গোস্বামী, মেধি আদি ৰূপে জনাজাত হয়। পিছত ওজনীৰ কোচ, কলিতা, কেওট জাতীয় লোকসকল আৰু কামৰূপৰ দুই এজন কলিতা মানুহে 'দত্ত' উপাধি লিখিবলৈ লয়। তলত কায়স্থ সমাজৰ আচাৰ অনুষ্ঠান আৰু বৈশিষ্ট্য দাঙি ধৰা হ'ল—

১। প্ৰাচীন কায়স্থ সমাজৰ নিজ নিজ গোত্ৰ আৰু প্ৰবৰ আছিল - আত্ৰেয়, আলম্যান, ঘৃত কৌশিক, বশিষ্ঠ, কাশ্যপ, পৰাশৰ, শাণ্ডিল্য, বাৎস্য, মৌদগল্য আদি তেওঁলোক প্ৰধান গোত্ৰ। সেইমতে প্ৰবৰো ভিন্ন ভিন্ন।

২। উজনী অসমৰ কায়স্থ ধৰ্মাচাৰ্য্যসকলে পুংসবনৰ বাহিৰে ৯টা সংস্কাৰ পালন কৰে, কিছুমানে গায়ত্ৰী মন্ত্ৰও জপ কৰা দেখা যায়। নামনি অসমৰ বিষয়া আৰু ধৰ্মাচাৰ্য্য কায়স্থসকলে চূড়াকৰণৰ দিনায়ে উপনয়নৰ ভিক্ষা, ব্ৰহ্মাচাৰ্য্য আদি সমস্ত আচাৰ পালন কৰি ছয় দণ্ডী যংসূত্ৰ ধাৰণ কৰে।

উজনী অসমৰ ব্ৰাহ্মণসকলে গৰ্ভধাৰণৰ পৰা উপনয়নলৈ আঠটা সংস্কাৰ একে দিনাই একে শ্ৰাদ্ধেৰে সম্পন্ন কৰিছিল। তাকে দেখি কায়স্থ ধৰ্মাচাৰ্য্যসকলেও একেদিনাই সমস্ত কাম কৰি উপবীত বা উত্তৰী দিয়াইছিল। নামনি অসমৰ ব্ৰাহ্মণ-কায়স্থসকলে যথাযোগ্য সময়ত সংস্কাৰবোৰ একাদিক্ৰমে কৰি গৈছিল আৰু তাৰ ফলস্বৰূপে কায়স্থৰ চূড়াকৰণতে (বিবাহক বাদ দি) সকলো সংস্কাৰ সম্পন্ন হৈছিল। কিন্তু ব্ৰাহ্মণসকলৰ তাৰ পিছতহে উপনয়ন সংস্কাৰ হৈছিল। এই কাৰণতেই সম্ভৱতঃ উজনী অসমৰ কায়স্থ ধৰ্মাচাৰ্য্যসকলে 'উপনয়ন' শব্দ প্ৰয়োগ কৰিবলৈ আৰু কোনো কোনোৱে গায়ত্ৰী মন্ত্ৰ ল'বলৈ সুবিধা পাইছিল।

কায়স্থসকলে অনূঢ়া কন্যা বিয়া কৰায়, পুষ্পিতা হোৱাৰ পিছত শান্তি লয়। ব্ৰাহ্মণসকলৰ দৰে এওঁলোকেও বিধবা বিবাহ নকৰায়। বৰবৰণ সময়ত কায়স্থসকলে মালা বস্ত্ৰেৰে বৰাৰ ওপৰিও উত্তৰী বা সৎসূত্ৰেৰে বৰণ কৰা প্ৰথা আছিল। কিছু সংখ্যক কায়স্থ গোসাঁয়ে বিয়াত পৰমান্নৰ হোম দিয়াৰ কথাও উল্লেখ পোৱা যায়।

৩। কায়স্থসকলে সকলো সংস্কাৰ অনুষ্ঠানত নান্দিমুখ শ্ৰাদ্ধ কৰিছিল।

নবান্ন ভোজন, বিষ্ণু সহস্ৰ নাম পাঠ, ব্ৰহ্মাভোজন, হোম আৰু ভোজ্য উৎসৰ্গ কায়স্থসকলৰ একো একোটা বাৎসৰিক কৰ্ম আছিল।

৪। কায়স্থসকলৰ নিজা নিজা উপাস্য বিগ্ৰহ আছিল। তেওঁলোকৰ পুৰোহিত লগে লগে ফুৰিছিল। সকলো কায়স্থ ধৰ্মাচাৰ্য্য আৰু বিষয়াৰ নামঘৰ আছিল আৰু তাত বিগ্ৰহ স্থাপন কৰি দৈনিক পূজা সেৱা কৰিছিল। পৰৱৰ্তী সময়ত অষ্টাক্ষৰী বীজমন্ত্ৰেৰে তেওঁলোকে নিজে গোসাঁই পূজা কৰিবলৈ লয়।

৫। কায়স্থ ধৰ্মাচাৰ্য্য আৰু বিষয়াসকলক কোচ আৰু আহোম ৰজাসকলে কায়স্থ সকলৰ স্থাপিত বিগ্ৰহৰ পূজা-সেৱা চলাবৰ বাবে বিস্তৰ ভূমি আৰু লোক দান কৰিছিল।

৬। কায়স্থ ধৰ্মাচাৰ্য্যসকলে ব্ৰাহ্মণ আদি সকলো বৰ্ণকেই শৰণমন্ত্ৰ দিছিল।

৭। কায়স্থসকলে - হাল-ভাৰ নবাইছিল আৰু কাৰো ঘৰুৱা চাকৰি নকৰিছিল।

৮। কায়স্থৰ তিৰোতাসকলে আত্মমর্যাদা ৰাখি ফুৰিছিল। তেওঁলোক সভা-ভাওনা, দেউল-ভঠালী, হাট-বজাৰ আদিত নগৈছিল। তেওঁলোকে কেতিয়াবা ক'ৰবালৈ যাবলৈ হ'লে দোলা, গাড়ী বা নাওঁত যাতায়ত কৰিছিল।

৯। কায়স্থসকলে ৩০ দিন মৃত্যাশৌচ পালন কৰিছিল। কোনো কোনো কায়স্থই প্রেতপক্ষত তর্পণ কৰিছিল।

১০। প্রাচীন কামৰূপৰ কায়স্থসকলৰ বেচিভাগেই সংস্কৃত ভালদৰে জানিছিল। কিছুমানে পুৰোহিতক আগত বহুৱাই নিজে মন্ত্র মাতি শ্রাদ্ধাদি ক্রিয়া সম্পাদন কৰিছিল।

১১। সকলো কায়স্থই আত্মৰক্ষাৰ অর্থে প্রস্তুত আছিল। তাৰ চিন স্বৰূপে পৰৱর্তীকালৰ বিষয়া কায়স্থসকলৰ প্রতি ঘৰে ঘৰে তৰোৱাল, যাঠী আদি দেখিবলৈ পোৱা গৈছিল।

১২। বহুত কায়স্থই ঔষধ পাতি জানিছিল। ঘৰৰ বা ওচৰ-চুবুৰীয়াৰ কিবা বেমাৰ হ'লে তেওঁলোকে নিজেই চিকিৎসা কৰিছিল।

১৩। কিছুমান কায়স্থই জ্যোতিষ ভালদৰে জানিছিল। কোষ্ঠী বনোৱা, ঘৰৰ ভেটি চোৱা, দৰা-কইনাৰ জোৰা চোৱা আদি কাম তেওঁলোকে কৰিছিল।

১৪। আগেয়ে প্রায় সকলো কায়স্থই খাৰ-বাৰুদৰ কাম ভালদৰে জানিছিল।

প্রাচীন কামৰূপীয় ক্ষত্রিয় কায়স্থসকলৰ গাত ক্ষত্রিয়ৰ স্বভাৱজ গুণ আৰু কর্মবোৰ আছিল; কালৰ গতিত অন্যান্য ঠাইৰ ক্ষত্রিয়ৰ দৰে তেওঁলোকৰ বংশধৰসকলৰ গাৰ পৰাও শৌর্য্য, তেজ আৰু যুদ্ধলৈ আগবঢ়া শক্তি ক্রমশঃ লোপ পাবলৈ ধৰাত তাৰ ঠাইত তেওঁলোকৰ গাত, শম, দম, পবিত্রতা, সৰলতা ান আদি গুণ স্বকীয়ভাৱে সোমাই পৰে।❑

পাদটীকা ঃ

১। মহাভাৰত, শান্তি পর্ব ৮৮ অধ্যায়।
২। দত্তবৰুৱা শ্রীহৰিনাৰায়ণ-কায়স্থ সমাজৰ ইতিবৃত্ত, পৃ. ৮
৩। কায়স্থ তত্ত্ব দীধিতি, পৃ. ১১২
৪। অবেস্তাৰ (ইংৰাজী অনুবাদ) পৃ. ২০
৫। Aien-I-Akbary, tranalated by Col. H.S. Garat, Vol. 11 PP. 126
৬। কামৰূপ বুৰঞ্জী, পৃ. ২
৭। দত্তবৰুৱা, শ্রীহৰি নাৰায়ণ - কায়স্থ সমাজৰ ইতিবৃত্ত, পৃ. ১৩

-সহযোগী অধ্যাপক, হিন্দী বিভাগ,
গুৱাহাটী মহাবিদ্যালয়
গুৱাহাটী, অসম

चलो गाएँ हम

हमारा नभ-चुंबी नगराज,
विश्व में इतना ऊँचा कौन?
हमारी ही भागीरथी पवित्र,
नदी इतनी गौरवमय कौन?
हमारे ही उपनिषद् महान,
श्रेष्ठतम कहे विश्व हो मौन।
जहाँ की धरती ही दिन-रात स्वर्णकिरणों की चमक रही।
चलो गाएँ हम 'भारत की समता में कोई देश नहीं'।।1।।

देश जो ऋषियों की तपभूमि,
जहाँ पर उपजे वीर महान,
जहाँ गूँजे नारद के गीत,
जहाँ सद्विषयों का सम्मान
जहाँ पर अतुल ज्ञान है भरा,
दिए उपदेश बुद्ध भगवान।
हिंद से अधिक, विश्व में कोई देश कहीं प्राचीन नहीं।।
चलो गाएँ हम 'भारत की समता में कोई देश नहीं'।।2।।

विघ्न-बाधाओं से क्यों डरें?
दीन बन कष्ट न भोगें कभी।
स्वार्थ में नीच कर्म क्यों करें?
निराश न हों इस भू पर कभी।
मूल, फल, कदली, पय, मधु, धान,
भरे-पूरे भारत में सभी।
आर्यजन की इस धरा समान, समुन्तत धरा न दूजी कहीं।
चलो गाएँ हम 'भारत की समता में कोई देश नहीं'।।3।।

-सुब्रह्मण्य भारती

POSTAL REGISTRATION NO. GH-127/2022-2024 ❖ Date of publication : 28th February, 2022 ❖ RNI No. ASSBIL/2009/31008

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी की ओर से मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया द्वारा
ग्राफिक्स प्रेस, हेदायतपुर, गुवाहाटी-3 में मुद्रित, प्रकाशित एवं प्रसारित।
संपादक : डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया कार्यकारी संपादक : रामनाथ प्रसाद
E-mail : arps.guwahati@gmail.com